~~5/1~~
1/20
LIBRARY
No. ~~65~~ 1/20
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

❁ श्रीसद्गुरवे नमः ❁

॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः ॥

यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः

(सरहस्यः सप्रमाणः भाषाटीकासमेतश्च)

अनिकेत-श्रीपूज्यचरण-परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-ब्रह्मनिष्ठ-
श्रीशङ्करतीर्थस्वामिपाद-महाराजेन
सम्पादितः

यस्याशीर्वादबलेन गुरोः कारुण्यवारिधेः ।
मूकोऽप्यहं वाचालोऽस्मि तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
(श्रीशङ्करतीर्थः)

शाके १८७७, संवत् २०१२

सन्ध्या-माहात्म्यम्

अग्निपुराणम्,—

सायं प्रातश्च यः सन्ध्यामुपास्ते शुद्धमानसः ।
जपन् हि पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ॥
तया सम्भावितो देव्या ब्राह्मणो धूतकिल्बिषः ।
न सीदेत् प्रतिगृह्णानोऽपि पृथ्वीं ससागराम् ॥

यमः,—

अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ।
पुनाति वृषलस्यान्नं बहिःसन्ध्या ह्युपासिता ॥

योगियाज्ञवल्क्यः,—

सर्वावस्थोऽपि यो विप्रः सन्ध्योपासनतत्परः ।
ब्राह्मण्यात् स न हीयेत अन्यजन्मगतोऽपि सन् ॥
सन्ध्या तूपासिता येन तेन विष्णुरुपासिता ।
दीर्घमायुः स विन्देत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

LIBRARY
No......1/.20
Anandamayee Ashram
BANARAS

❀ श्रीसद्गुरवे नमः ❀

॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः ॥

यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः

(सरहस्यः सप्रमाणः भाषाटीकासमेतश्च)

अनिकेत-श्रीपूज्यचरण-परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-ब्रह्मनिष्ठ-
श्रीशङ्करतीर्थस्वामिपाद-महाराजेन
सम्पादितः

"आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥"
(कुमारिलभट्टः)

शाके १८७७, संवत् २०१२

प्रकाशक :
अध्यापक पं० श्रीरोशनलाल शर्म्मा,
शास्त्री, प्रभाकर (हिन्दी), एम० ए०,
'श्रीगुरुमन्दिर', ग्राम पोष्ट-सलोह्,
पालमपुर, जिला काङ्गड़ा (पञ्जाव)।

पुनर्मुद्रणार्थं दक्षिणा अर्द्धमुद्रा

मुद्राकर : भारत प्रिंटिंग वर्क्स,
वैद्यनाथ-देवघर
(संथाल परगना)

1/20
LIBRARY
No.........
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

॥ श्रीगुरुः ॥

प्रकाशकका निवेदन

ज्वालामुखी पहाड़पर भ्रमण करते समय हमारे परमाराध्य-श्रीपादपङ्कजयुगल अनिकेतनवासी अनन्तश्री श्रीगुरुदेव भगवान्‌ने पालमपुर तहशीलमें कुछ दीर्घ काल व्यतीत करनेकी महती कृपा की थी। उस समय शिष्य तथा भक्तवृन्दकी विशेष प्रार्थनाके अनुसार सम्वत् १९९६ आश्विनके परमपूत श्रीदुर्गामहाष्टमीके दिन इस 'यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः' का सम्पादन कार्य उन्हींसे प्रारम्भ हुआ था और वह शुभ कार्य समाप्त हुआ था एक पक्षकालमें—हम सबपर अशेष कृपादृष्टि ही इस शुभ उद्योगका एकमात्र कारण था। इस पुस्तककी परिष्कार पाण्डुलिपि लिखनेका सौभाग्य मिला था हमारे एक आदरणीय श्रीगुरुभ्राता श्रीबाबूलालजी गुप्त 'श्याम' सण्डीलावालेको सम्वत २००२ में और ईश्वरेच्छासे आज सम्वत् २०१२ में इस पुस्तकका प्रकाशन हो रहा है। 'सामवेदीयः सन्ध्याप्रयोगः' का सम्पादन इसी साल हुआ जो 'परिशिष्ट' में दिया गया है।

द्विजमात्रसे हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि वे इस पद्धति के अनुसार सन्ध्याके अनुष्ठान द्वारा परमात्माकी आराधना करके अपने इस दुर्लभ मनुष्य जीवनको सफल बनावें।

अलमतिविस्तरेण। शुभमस्तु—

'श्रीगुरुमन्दिर', सलोह,
पालमपुर, जि० काङ्गड़ा।
मकरसंक्रांति सं० २०१२

विनीत
रोशनलाल शर्म्मा
प्रकाशक

पुस्तकप्राप्ति-स्थान :—

१ । प्रकाशक ।

२ । वैद्य श्रीरूपलाल उपाध्याय ,
मु० पो० ठाकुरद्वारा , जिला काङ्गड़ा ।

३ । श्रीहृद्यराम मिश्र , बी० ए० ,
आर्यनगर-मोतीनगर रोड, लखनऊ ।

४ । श्रीबाबूलाल गुप्त ' श्याम ' ,
श्रीशीतला मन्दिर,
मु० पो० सण्डीला, जि० हरदोई ।

५ । पण्डा श्रीवटुकनाथ चक्रवर्त्ती ,
बिलासी, वैद्यनाथधाम, देवघर ।

॥ श्रीहरिः ॥

(विषयानुक्रमणिका)

विषय	पृष्ठ
सन्ध्यातत्त्व	१
अवश्य जानने योग्य बातें	
वस्त्र-परिधान	६
दिग्निर्णय	१०
साधारण आचमन	११
तिलक-धारण	१३
रुद्राक्ष-धारण	१४
कुशपवित्र-धारण	१५
जल-शुद्धि	१५
आसन-शुद्धि	१६
शिखाबन्धन	१६
मार्जनस्नान या मंत्रस्नान	१७
प्रायश्चित्त	१९
संकल्प या प्रार्थना	२१
प्राणायाम	२२
ऋष्यादि स्मरण करने में क्रम	२४
विशेष आचमन	२५
मार्जनम्	२६
अघमर्षण	२७
सूर्य्यजलांजलिदान	२८
उपस्थान	३०
अंगन्यास	३१
गायत्रीके ऋषि आदि	३२
गायत्रीका ध्यान	३२
गायत्रीका आवाहन	३३
गायत्री-जप	३३
गायत्री सावित्री (ब्राह्मण के लिये अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य तीनोंके लिये)	४०
त्रिष्टुप् सावित्री (क्षत्रियके लिये)	४१
जगती सावित्री (वैश्यके लिये)	४२
एक प्रणव लगाकर गायत्री जपनेकी विधि	४३
दो प्रणव लगाकर गायत्री जपनेकी विधि	४४

विषय	पृष्ठ
तीन प्रणव लगाकर गायत्री जपनेकी विधि	४४
"धियो यो नः प्रचोदयात्" का उच्चारण	४५
आवर्त्तन	४५
विश्वे देवाः या विश्वदेवाः विश्वेदेवाः नहीं	४६
सूर्य्यार्घ्यदान तथा सूर्य्य-	

विषय	पृष्ठ
प्रणाम	४७
आचमन	४८
जपके अतिरिक्त अन्यत्र गायत्री	४८
अशौचमें गायत्रीजप	४८
आपत्कालमें सन्ध्या-विधि	५०
सायंसंध्याका निषेध	५०

(यजुर्वेदि-सन्ध्याविधि-विषयानुक्रमणिका)

विषय	पृष्ठ
आचमन विष्णुस्मरण	५४
भस्मतिलक आदि धारण	५४
मार्जन-स्नान	५६
संध्या-प्रायश्चित्त	५८
संकल्प या प्रार्थनो	५८
आचमन	५८
आत्मरक्षा	५९
प्राणोयाम	५९
आचमन	६२
प्रातःसंध्यामें आचमनका	

विषय	पृष्ठ
मन्त्र	६२
मध्याह्नसंध्यामें आचमनका मन्त्र	६३
सायंसंध्यामें आचमनका मंत्र	६४
मार्जन	६५
अघमर्षण	६५
मन्त्रद्वय	६६
आचमन	६७
सूर्य्यजलाञ्जलि-दान	६७

1/20

विषय	पृष्ठ
ऋृग्यादिके सहित मंत्र	६८
सूर्य्योपस्थान	६९
उपस्थान-मंत्राः	६९
अङ्गन्यास	७२
गायत्रीके ऋृषि देवता आदिका स्मरण	७३
गायत्रीका ध्यान	७३
गायत्रीका आवाहन	७४
गायत्रीका उपस्थान	७४
जपनेमें गायत्री-मंत्रका स्वरूप	७५
आवर्त्तन नमस्कार	७६
गायत्री-विसर्जन	७६
सूर्य्यार्घ्य-दान	७८

विषय	पृष्ठ
सूर्य्य-प्रणाम	७८
आचमन	७८
संध्याङ्ग भूमृत्तिको धारण	७९
भगवान्से प्रार्थना	७९
परिशिष्ट	८१
गायत्री-शापविमोचन	८२
गायत्री-हृदय	८४
गायत्री जपके पूर्वकी चौबीस मुद्रा	९५
गायत्री-जपके बादकी आठ मुद्रा	९५
गायत्री-कवच	९६
गायत्री-तर्पणम्	९८
सामवेदीयसंध्याप्रयोगः	१०२-१२५

LIBRARY
No............
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२१	संधि	संधिं
२	२१	संध्य	संध्यां
१४	२३	भामिनो	भामितो
१५	७	पवित्तोण	पवित्रेण
१८	२	ऋँङ्मात्रै	ऋँङ्मंत्रै
२६	४	असिक्निया	असिक्न्या
२६	६	बाह्वौः	बाह्वोः
२६	६	अरुवोरोजः	ऊरुवोरोजः
२६	१२	बहुलम्'	'व्यत्ययो बहुलम्'
२७	१६	अर्यौ	अर्थौ
२९	६	चक्षेच्यो	चक्षेयो
३७	८	कुर्यौन्निचैः	कुर्यान्नीचैः
५९	७	'भाववृत्तिं	'भाववृत्तं
६७	१२	अन्नश्चरसि	अन्तश्चरसि
~~९३~~	~~१६~~	~~फान्से~~	~~फाक्से~~
९६	१६	—	'तु'
१०२	२	सामवेदी-य	सामवेदीय-

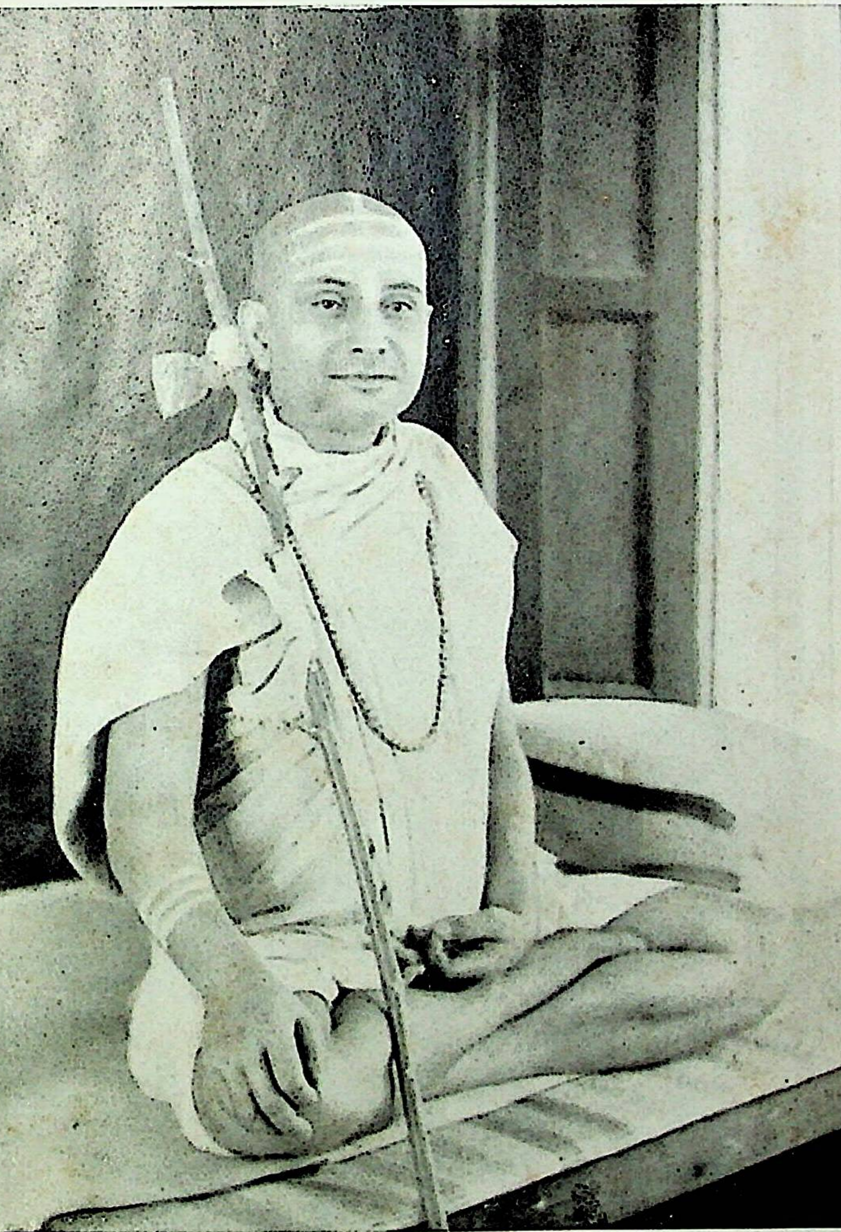

अनिकेत-श्रीपूज्यचरण-परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-ब्रह्मनिष्ठ-
श्रीशङ्करतीर्थस्वामिपाद-महाराज

ॐ तत्सत्

प्राक्कथनम्

(१) सन्ध्यातत्त्व

परमात्मा के प्रपंचस्वरूप इस चराचर जगत् में मनुष्य चोला ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि विहित कर्म के अनुष्ठान और निषिद्ध कर्म्मों के त्यागने की शक्ति मानवशरीर में ही है। इस कारण देवता भी मनुष्य देह प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता धर्म्माचरण के द्वारा ही है। जिस प्रकार बिना प्राण-वायु के शरीर का रहना असम्भव है, उसी प्रकार बिना नित्य नैमित्तिक कर्म्मों के मानव जीवन की सफलता भी असम्भव ही है। इन कर्म्मों के न करने पर मनुष्य पाप-भागी होता है। जिन कर्म्मों के न करने से पाप लगता है परन्तु करने से पाप से रक्षा होती है वे "नित्य कर्म" हैं; जैसे-सन्ध्या, तर्पण, शिवपूजा, इष्ट देवतापूजा, माता पिता के श्राद्ध, और ब्राह्मण के लिये अधिकन्तु घर में रखे हुए नारायणादि की पूजा। और जो कर्म ग्रहणादि निमित्तों से किये जाते हैं वे "नैमित्तिक कर्म्म" हैं; जैसे सूर्य या चन्द्र-ग्रहण में स्नान, दान, तर्पणादि; अमावस्या-श्राद्ध; तीर्थ-श्राद्ध इत्यादि।

ब्राह्मण ऋक्, यजुः, साम ये तीन वेदी वाले होते हैं। इस कारण पुरुषानुक्रम से जो जिस वेदी वाला है, वह उसी वेद के अनुसार ही धर्म्म-कर्म्म करता है। ब्राह्मण से अतिरिक्त वर्णों के

धार्मिक कृत्य यजुर्वेद के अनुसार होते हैं। पौराणिक और तान्त्रिक कार्यों में सबका ही समान अधिकार है।

नित्य, नैमितिक और काम्य कर्मों में से (जो कर्म न करने से पाप नहीं लगता, परन्तु करने से विशेष फल होता है, वे 'काम्य' कर्म है) कुछ कर्म वर्ण के भेद से कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य रूप से शास्त्रों में निर्दिष्ट हुये हैं। वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इनसे अतिरिक्त पांचवां वर्ण नहीं है। उपनयन-संस्कार अर्थात् यथाविधि यज्ञोपवित धारण को भी जन्म कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के मातृगर्भ में एक जन्म और उपनयन-संस्कार रूप दूसरा जन्म होने के कारण वे द्विज कहलाते हैं— "मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्। ब्राह्मणा—क्षत्रिय-विशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः" (याज्ञवल्क्यः) शूद्र का उपनयन-संस्कार नहीं होता, केवल मातृगर्भ में ही एक जन्म होता है, इस कारण शूद्र "एक जाति" कहे जाते हैं। चारो वर्णों के सम्मिश्रण से पैदा हुये लोगों को सङ्कीर्ण वर्ण या 'वर्ण सङ्कर' कहते हैं। चतुर्वर्ण के अतिरिक्त सनातन आर्य्य शास्त्रोक्त क्रियाओं से विवर्जित जातियां 'म्लेच्छ' नाम से अभिहित हुई हैं। वेद भगवान की आज्ञा है कि उपनयन संस्कार हो जाने पर प्रत्येक द्विज प्रतिदिन संध्या करे— "अहरहः संध्यामुपासीत। तस्मात् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे संध्यां उपासते"। षड्विंश प्र० ४ खं० ५ "एतद्वै संधिं संध्यां ब्रह्मवित् उपासते" (जावाल उप० २)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजों के पुण्य कर्म्मों में सन्ध्या मुख्य (प्रधान) है, क्योंकि सन्ध्या न करने पर किसी भी धर्म कर्म करने में अधिकार नहीं होता—"अनर्हः कर्मणां विप्रः

सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः।" (छन्दोग परिशिष्टे) 'दक्षस्मृति' में कहा गया है "सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत् कुरुते किञ्चिन् न तस्य फलभाग् भवेत्॥" अर्थात् सन्ध्या न करे तो सदा अपवित्र रहता है, किसी भी धर्मकर्म का अधिकारी नहीं रहता, अधिकन्तु जो कुछ भी धर्म-कर्म करता है उसका फल भी नहीं पाता॥ व्यासस्मृति में कहा है— "तस्मान्नित्यं प्रकर्त्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्। तदभावेऽन्यकर्मदा-ऽधिकारी भवेन्नहि॥" अर्थात् प्रतिदिन उत्तम फल देनेवाली सन्ध्योपासना अवश्य करे, क्योंकि सन्ध्या न करने पर और पुण्य कर्मों में अधिकारी नहीं हो सकता॥ मनु जी महाराज ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि, जो उपनीत द्विज प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करता, उसे द्विजों के सारे कर्मों से निकाल देना चाहिए, जैसे कि शूद्र वहिष्कृत हैं— "नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्। स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥" मरीचिः महाराज ने भी कहा है— "सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता। जीवन्नेव भवेच्छूद्रो, मृतः श्वा चाभिजायते॥" अर्थात् जो उपनीत द्विज संध्या का अर्थ नहीं जानता और सन्ध्या करता भी नहीं, वह तो जीवित होता हुआ ही शूद्रत्व को प्राप्त होता है, और मर कर कुत्ता होकर जन्मता है। महर्षि शातातप ने छः प्रकार के ब्राह्मणों को अब्राह्मण कहा है, उनमें जो सन्ध्या नहीं करता वह छठा है— "नोपासीत द्विजः सन्ध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः।". विष्णु पुराण (१।२।१०।३ में कहते हैं कि सन्ध्या न करनेवाले दुरात्मा द्विज को तामिस्र नर्क में गिरना पड़ता है। 'उपतिष्ठन्ति वै संध्यां येन पूर्वां न पश्चिमां। ब्रजन्ति ते दुरात्मान स्तामिस्रं नरकं नृप।' यहां तक

सन्ध्या न करने का दोष कहा गया। अब सन्ध्या करने का फल सुनो।

यमस्मृति में कहते हैं--"सन्ध्यामुपासते ये तु नियतं संशितव्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्।" जो द्विज नियमावलम्बी होकर सन्ध्या करते हैं वे पापमुक्त हो अक्षय ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं॥ याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—"निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्। त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं विप्रणश्यति॥" अर्थात् दिन रात में अनजान से किये गये पाप प्रातः मध्याह्न और सायं सन्ध्या करने से बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं॥ मनु जी महाराज का कथन है कि, ऋषि लोग बड़ी देर तक सन्ध्या करते हैं इस कारण वे दीर्घ आयु, धर्म्म बुद्धि यश कीर्त्ति और ब्रह्मतेज को प्राप्त होते। —"ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायु-रवाप्नुयुः। प्रज्ञां यशश्च कीर्त्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥" इस कारण धर्म की रक्षा, यशः, कीर्त्ति, तेज और धन को चाहने वाले को नित्यप्रति सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। 'विश्वामित्र कल्प' में तो सन्ध्या को द्विजत्व की जड़ कहा गया है और यह भी कहा गया है कि विप्र रूपी वृक्ष की जड़ जो सन्ध्या है उसकी बड़े यत्न से रक्षा करनी चाहिये क्योंकि जड़ के नष्ट हो जाने से फिर न तो उस वृक्ष की डालियाँ जो वेद हैं वे तथा न तो धर्म्मकर्म जो उसके पत्ते हैं वे भी रह जाते—"विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च सन्ध्या, वेदाः शाखाः धर्मकर्माणि पत्रम्। तस्मान्मूलं यत्नेन रक्षणीयं, छिन्नेमूले नैव पत्रं न शाखाः।" इस कारण शूद्रत्व की प्राप्ति से बचकर द्विजत्व की रक्षा के लिये विधि मालूम करके सन्ध्या की उपासना नित्यप्रति अवश्य करना चाहिये।

ईश्वर की उपासना मनमानी-विधि से नही करना चाहिये क्योंकि उससे बहुतेरी त्रुटियां रहने की सम्भावना रहती है, सुतरां असली फल लाभ नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने 'भागवत' में उद्धव के प्रति कहा है। —"सन्ध्योपास्त्यादि कर्माणि वेदेनाचोदितानि मे। पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥" अर्थात् सन्ध्या पूजादि वेद में जैसे कही गयी है, वैसे ही एकाग्रचित्त हो मेरी पूजा करोगे, उससे कर्म-बन्धन कट जायगा अर्थात् मुक्ति लाभ का अधिकार प्राप्त होगा। गीता में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है—"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि॥" अर्थात् जो शास्त्र के आदेश को त्याग कर अपनी मनमानी चलता है, वह इस लोक में सिद्धि या सुख और परलोक में श्रेष्ठ गति को प्राप्त नहीं होता। इसलिये कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के निर्णय में शास्त्र ही तुम्हारे लिये एक मात्र प्रमाण है। शास्त्र विधि जान कर तुम्हें कर्म करना चाहिये॥ कोई भी क्रिया फलवती नहीं हो सकती जब तक कि वह विधिपूर्वक न की जाय। पथ्य के विना जिस प्रकार चिकित्सा निष्फल सी होती है उसी प्रकार अविधि से की हुई क्रिया भी लाभदायक नहीं हो सकती॥

दिन और रात की सन्धि के समय को मुनियों ने 'सन्ध्या' कहे हैं—"अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः। सा तु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥" (दक्षः) फिर दिन और रात की संधिके समय जो उपासना की जाती है, उसे भी पण्डित लोग 'सन्ध्या' कहते हैं–"उपास्ते संधिवेलायां निशाया दिवसस्य च। तामेव

सन्ध्यां तस्मात्तु प्रवदन्ति मनीषिणः" (व्यास) और सन्ध्या के समय जिस देवता की उपासना की जाती है, उसे भी 'सन्ध्या' कहते हैं अर्थात् गायत्री के प्रतिपाद्य परब्रह्म का भी नाम 'सन्ध्या' है। सूर्य डूबने के बाद सायंसन्ध्या और सूर्य उदय के बाद प्रातःसन्ध्या नहीं करना चाहिये अपितु सन्धि के समय सन्ध्या करे—"सन्धौ सन्ध्या-मुपासीत नास्तगे नोद्गते रवौ।" (यज्ञवल्क्यः)अर्थात् सन्धि के समय ही सन्ध्या उपासना करना ठीक समय है।

यहां 'सन्ध्या' शब्द का अर्थ हैं दिन और रात की सन्धि के समय सम्यक् ध्यान। किसका ध्यान—ब्रह्मतेज का। क्यों ध्यान करना है ? एकाग्र चित्त से किसी भी विषय का चिन्तन करने से हृदय क्रमशः उसी भाव से भावित हो जाता है। इसलिये नित्य-प्रति एकाग्र मन से परमात्मशक्ति का चिन्तन करते रहने से हमारे हृदय में भी धीरे-धीरे उसी शक्ति का संचार होगा और हम शक्तिमान होकर दैवी कृपा पाकर सम्पूर्ण शोक-दुःख, पाप-ताप से पार होकर, जीवन की चरम और परम लक्ष्य पर पहुंचेंगे। परमात्मा ही समस्त शक्ति के आधार हैं। वे ही 'ब्रह्मा'-रूप से जगत रचते, 'विष्णु' रूप से सृष्टि पालते, और 'रुद्र' रूप से प्रलय-काल में सम्पूर्ण जगत् संहार करते अर्थात् अपने में खींच लेते हैं। वे सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं और अपनी शक्ति के द्वारा सब को प्रकाशित कर रहे हैं। वे ही समस्त भूतों के प्रसविता भी हैं। वे ही जल के रस, अग्नि के तेज, सूर्य को आभा, वायु के स्पर्श, और पृथ्वी के गन्ध हैं। वे ही हमारी बुद्धि को भांति-भांति के कर्मों में प्रेरणा कर रहे हैं। इसलिए उन प्रभु जी का तेज हम सब के लिए वरेण्य अर्थात् उपासना के योग्य है। ऋषि-

मुनि लोग सर्वदा ही इसी ब्रह्मशक्ति की उपासना व ध्यान कर के अमूल्य शक्ति के अधिकारी हुये और वंशधरों को सर्वदा इसी महती शक्ति की उपासना करने के लिए विशेष रूप से उपदेश देते थे, क्योंकि वे जानते थे कि शक्ति-हीन जीवन व्यर्थ और विडम्बनामात्र है। कहा भी गया है— "शिवोपि शवतां याति कुंडल्या विवर्जितः। शक्तिहीनस्तु यः कश्चिद-समर्थः स्मृतो बुधैः" अर्थात् शिव (श् इ व) के मध्य में जो इकार है वह शक्ति है, यदि इस प्रकार शक्तिविहीन शिव हो तब मृतक है; अतएव बिना शक्ति के सब अशक्त है। शक्ति ही सामर्थ्य है। भागवत में कहते हैं "न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित्। न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च। गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता। यया विना त्वधोः याति ब्राह्मणोऽपि सर्वथा। तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्परः। देवीपादाम्बुजरता आसन्-सर्वे द्विजोत्तमः।" अर्थात् जहाँ कहीं वेदों में विष्णु आदि देवताओं की उपासना का वर्णन है वह नित्य कर्म नहीं है नैमित्तिक कर्म है। किन्तु सम्पूर्ण वेदों में शक्ति गायत्री को उपासना नित्य-कर्म विस्तार से वर्णित है जिनकी उपासना न करनेसे ब्राह्मण भी अधोगति को प्राप्त होता है अतः देवी गायत्री के जप में सब द्विजों को निरन्तर तत्पर रहना योग्य है।

परमेश्वर सबके अन्दर विराजमान रहने पर भी बिना उपा-सना के मनुष्य के हितकारी नहीं होते "विनाचोपासनादेव न करोति हितं नृषु।" इस कारण ईश्वरोपासना मनुष्य के लिये अवश्य मुख्य कर्त्तव्य है। द्विजों के लिये सन्ध्या ही मुख्य ईश्वरो-पासना है और धार्मिकता की जड़ है। उनके कर्मों में पहला

कर्म सन्ध्योपासन ही है। वेदादि के स्वाध्याय या यज्ञादि धर्म्म कर्मानुष्ठान सन्ध्या करने के उपरान्त ही करने पर सिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं। इसी कारण 'कूर्म्म पुराण' में कहा गया है—"योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः। विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥" अर्थात् सन्ध्योपासना त्यागपूर्वक जो ब्राह्मण अन्य अन्य धर्मकर्म में लगता है, वह दस हजार बार नरक भोगता है।

अतः कल्याणकामी जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का विधि-पूर्वक यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया हो, ऐसे लोगों को शास्त्राज्ञा का पालन तथा अपने आदर्शों का अनुसरण करते हुए प्रति दिन ठीक समय पर सन्ध्या अवश्य ही करनी चाहिये।

ॐ तत्सत्

(२) अवश्य जानने योग्य बातें

वस्त्र-परिधान—त्रिकच्छ करके वस्त्र पहनना चाहिये। वाम-कटि, पृष्ठ और नाभि को कक्ष या कच्छ कहते हैं। उन स्थानों में वस्त्र घुसा कर पहनने से 'त्रिकच्छ' होता है। त्रिकच्छ करके धोती पहनने से द्विज शुद्ध होता है। "वाम कुक्षौ च नाभौ च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्। त्रिकच्छेन समायुक्तो द्विजोऽसौ मुनिरुच्यते ॥" (याज्ञवल्क्यः) "वामे पृष्ठे तथा नाभौ कच्छत्रयमुदाहृतम्। त्रिभिः कच्छैः परिज्ञेयो विप्रो यः स शुचिर्भवेत् ॥" (स्मृति संग्रहे) ॥

विना दुपट्टा (चद्दर) ओढ़े केवल धोती पहने हुये आचमन, जप, सन्ध्या, देवपूजा, होम, स्वाध्याय तथा भोजन नहीं करना चाहिये—"होम-देवार्चना-द्यासु क्रियासु पठने तथा। नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत द्विजो नाचमने जपे ॥" (विष्णु-पुराणे) "नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याद् भोजनं च सुरार्चनम्।" (व्याघ्रपादः) यदि उपवस्त्र न रहे, तो एक अधिक यज्ञसूत्र धारण करना कर्त्तव्य है; और यदि धोती का भी अभाव हो, तो और भी एक अधिक जनेऊ धारण करे यानी चार यज्ञोपवीत धारण करने से बिना धोती और उपवस्त्र (यानी उत्तरीय) के भी सारा धर्मकर्म किया जा सकता है। "यज्ञोपविते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे चतुर्थकम् ॥" (पारस्करगृह सूत्रे का० २ क० ५) "उपवस्त्रं यदा न स्यात् तदा चत्वारि धारयेत् ॥" (परशुराम निबन्धकारः)।

उपवस्त्र यानी उत्तरीय यानी दुपट्टा या चद्दर को जनेऊ के सदृश पहनना होता है। परन्तु जिसका पिता और बड़ा भाई जीवित हो, उसके लिये उत्तरीय धारण करना मना है।— "उत्तरीयं योगपट्टं तर्जन्यां रजतं तथा। न जीवत्पितृके धार्य्यं ज्येष्ठो वा विद्यते यदि॥" (प्रयोग-पारिजाते)।

परिहित सूती वस्त्र कमर से उतार देने पर ही अशुद्ध हो जाता है। उसे धोकर सुखा के पहनना चाहिये— धोने से ही वह शुद्ध होता है। परन्तु क्षौम और लोमज वस्त्र झाड़ने से ही पवित्र हो जाता है। सूचीविद्ध, जला हुआ, पराया, चूहे से कटा हुआ, धोबी का धोया हुआ और टूटा हुआ वस्त्र पहन कर तथा कमीज पहन कर धर्मकर्म करने का निषेध है—"न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः। मूषिकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः॥" (आपस्तम्बः) "न तु रजकधौतेन नाहतेन च कर्हिचित्।" (देवलः) "कर्मकुर्यान्न कंचुकी।" (स्मृतिः)

दिग्-निर्णय—यजुर्वेदी के लिये उत्तर और पूर्व दिशाओं के बीच मुंह करके बैठ कर सन्ध्या करनी चाहिये, क्योंकि, याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—"सन्ध्या-मुपासते यद्-यद् यथावत् तन्निबोधत। ऐशान्याभिमुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः॥" (याज्ञवल्क्यः) परन्तु सायं सन्ध्या में पश्चिम दिक् और वायुकोण के बीच मुंह करके गायत्री जपने की विधि है। —"सायमुत्तरा-पराभिमुखोऽन्वष्टमदेशं सावित्रीं जपेत्।" (आश्वलायनः) इसके भाष्य में कहा गया है— "सायंकाले उत्तरां परां दिशम् अभिमुखः वायुकोणाभिमुखः इत्यर्थः। तत्रापि नाञ्जसाभिमुखः, अपितु अन्वष्टमदेशम् अभिमुखः इत्यर्थः प्रतिच्यां दिशि य उत्तरो भागस्तदभिमुखः इत्यर्थः॥"

साधारण आचमन—बायें हाथ से आचमनी के द्वारा जितना सामान्य परिमाण जल जो ब्राह्मण के हृदय पर्यन्त, क्षत्रिय के कण्ठ पर्यन्त और वैश्य के तालु पर्यन्त जा सके, उतना जल गोकर्णाकृति (बीच की तीन अंगुली मिलाकर ऊँचा करके अंगूठे और कनिष्ठा को प्रसारित करने से गोकर्णाकृति होती है) से दाहिने हाथ के ब्राह्मतीर्थ (दाहिने हाथ के अंगूठे के नीचे तक हथेली के बीच से जो दीर्घ रेखा चली आई है और कलाई के पास जहाँ समाप्त हुई है उसे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं) में तीन बार लेकर तीन बार पान करे। फिर हाथ धोकर अंगूठे की जड़ से दो बार ओठों को पोंछे, और फिर तर्जनी मध्यमा और अनामिका मिलाकर उससे एकवार ओठों को स्पर्श करके हाथ धोवे। बाद में बायें हाथ, दाहिने और बायें चरण तथा सिर पर जल छिड़के; तर्जनी मध्यमा और अनामिका को मिलाकर उनके अग्रभागों से मुख-स्पर्श कर अंगूठे और तर्जनी के मिलित अग्रभाग से नासिका के दाहिने और बायें छिद्र, अंगूठे और अनामिका के मिलित अग्रभाग से दाहिने और बायें नेत्र, दाहिने और बायें कान, तथा अंगूठे और कनिष्ठा के मिलित अग्रभाग से नाभि स्पर्श करके और हाथ धोकर, करतल के द्वारा हृदय, दाहिने हाथ की समस्त अङ्गुलियों से सिर, और उन अङ्गुलियों के अग्रभागों से दाहिने और बायें कंधे स्पर्श कर हाथ धोवे। तीन बार जलपान से आरम्भ करके इस हाथ धोने तक करने पर एक बार 'आचमन' होता है।—"उपविष्टः शिखां बध्वा अफेनाबुद्बुद-मुदकमीक्षितं दक्षिणेन पाणिनादाय, कनिष्ठांगुष्ठौ विश्लिष्टौ वितत्य, तिस्र इतरांगुलीः संहतोर्द्ध्वाः कृत्वा, ब्राह्मेण तीर्थेन हृदयप्रापि

त्रिः पीत्वा, पाणिं प्रक्षाल्य, स्पृष्टांभसा अंगुष्ठमूलेन आकुंचितोष्ठ-मास्यं द्विः प्रमृज्य, सकृच्च संहतमध्यांगुलिभिः, पाणिं प्रक्षाल्य, सव्यपाणिं पादौ शिरश्चाभ्युक्ष्य, स्पृष्टाम्भःसंहतमध्मांगुलीत्रयाग्रेण आस्यमुपस्पृश्य, सांगुष्ठया—प्रदेशिन्या घ्राणविलद्वयम्, अनामिकया चक्षुः-श्रोत्रे, कनिष्ठकया च नाभिं, तलेन हृदयं, सर्वाभिरंगुलीभिः शिरः, तदग्रैः अंसौ च उपस्पृशे-दित्याचमनम् ॥" (आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे) **दक्ष और शौनक महाराज ने भी ऐसे ही आचमन कहा है।** "ततः स्पृशन्नाभिदेशं पुनरपश्च संस्पृशेत्।" (व्यास) ["अंगुष्ठोत्तरतो रेखा या पाणेर्दक्षिणस्य च। एतद् ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै।" (मार्कण्डेय पुराणे)। "अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं-तीर्थं प्रचक्षते ॥" (मनुः)॥ "अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः। प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥" (याज्ञवल्क्यः)॥ "आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्करम्। एतेनैव विधानेन द्विज आचमनं चरेत् ॥" (भरद्वाजः)॥ "गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिवेत् ॥" (आ० कारिका)॥ "तेन हस्तांगुष्ठमूले निधायैवापः स्पृष्ट्वा शुध्यतीति बोधितम् ॥" (आह्निक-कारिका)॥ "संहतांगुलिना तोयं ब्रह्मतीर्थे पिवेज्जलम्। मुक्तांगुष्ठ-कनिष्ठायां शेषेणाचमनं भवेत् ॥" (विश्वामित्र कल्पे)॥ "हृद्गाभिः पूयते विप्रः, कण्ठगाभिस्तु भूमिपः। वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु, शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥" (मनुः)॥ "हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः। शुद्धेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत् स्पृष्टाभिरन्ततः ॥" (याज्ञवल्क्यः)॥ "स्त्री शूद्रैः स्पर्शनं तथा" (औशनसः)] **होम के आरम्भ में, भोजन के आरम्भ में तथा वैदिक संध्या के आरम्भ में दो बार आचमन करना होता है, तथा अन्य कर्मों में एक बार करे। आचमन के**

अनन्तर सनातन विष्णु जी का स्मरण करने से शुद्धि होती है— "होमे भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि। आचान्तः पुनराचामे-दन्यत्रापि सकृत्सकृत्। द्विराचम्य ततः शुद्धः स्मृत्वा विष्णुं सनातनम्॥" (ब्रह्मपुराणे)॥

तिलक-धारण—विना तिलक किये स्नान, दान, जप, होम, संध्या, स्वाध्याय करने से वे कर्म निष्फल होते हैं— "स्नानं दानं जपो होमः संध्या-स्वाध्यायकर्मसु। अर्द्ध्वपुण्ड्र-विहीनश्चेत् तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥" (वृहन्नारदीये) कपाल में तिलक लगाकर संध्या करनी चाहिये। तिलक किये विना कर्म करने से वह व्यर्थ होता है-"ललाटे तिलकं कृत्वा सन्ध्याकर्म समाचरेत्। अकृत्वा भालतिलकं तस्य कर्म निरर्थकम्॥" (प्रयोगपारिजाते)॥ भस्म से तिलक करना ही सर्वोत्तम है, तीनों संध्या में ही भस्म-तिलक का आदेश है।—"सितेन भस्मना कुर्यात् त्रिसंध्यं च त्रिपुण्ड्रकम्॥" (भविष्यपुराणे)॥ "आग्नेयमुच्यते भस्म दग्ध-गोमयसम्भवम्। तदेव द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने॥" (काशीखण्डे)॥ परन्तु गंगामृत्तिका, तुलसीमूल की मृत्तिका, चन्दन और इनके अभाव में केवल जल से भी तिलक लगाने की विधि है—"मृद्भस्म चन्दनं प्रोक्तं तोयं चैव चतुर्थकम्॥" (प्रयोग-पारिजाते)॥

नासिका के तीसरे भाग से ब्रह्मरन्ध्र तक दस अंगुल परिमाण दीर्घ तिलक ही सर्वश्रेष्ठ है। आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके बैठकर, दाहिने हाथ की कनिष्ठा के बिना, जो कोई अंगुली से, भस्म को नख के स्पर्श से बचाकर, कपाल

में ऊद्र्ध्व पुण्ड्र तिलक करके, अनामिका, मध्यमा और अंगूठे से यानी मृगमुद्रा से त्रिपुण्ड्र तिलक करना होता है। कपाल में तिलक करने के बारे में कहा गया है कि, ब्राह्मण ऊद्र्ध्व पुण्ड्र और त्रिपुण्ड्र, क्षत्रिय केवल त्रिपुण्ड्र, वैश्य अर्द्ध चन्द्राकार, तथा शूद्र गोलाकार तिलक धारण करें— "ऊद्र्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात्, क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम्। अर्द्धचन्द्रं तु वैश्यस्य, वर्त्तुलम् शूद्रजातिषु॥" (स्मृतिः) कपाल, हृदय, नाभि, गले दाहिनी कंधे, दाहिनी और बायीं बांह, पीठ और सिर में तिलक लगाना चाहिये। ब्राह्मण को छः अंगुल, क्षत्रिय को चार, वैश्य को दो और शूद्रों को एक अंगुल प्रमाण त्रिपुण्ड्र लगाने की विधि है। —"ललाटे हृदये, नाभौ गलेंऽसे वाहुसन्धिषु। पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्थानेष्वेतेषु धारयेत्॥ षडंगुलप्रमाणेन ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम्। नृपाणां चतुरंगुल्यं, वैश्यानां द्यंगुलं मतम्। शूद्राणामथ सर्वेषामेकांगुल्यं त्रिपुण्ड्रकम्॥" (स्मृति-रत्नावल्याम्)। परन्तु जिसके पिता जी जीवित हैं वह केवल कपाल में ही तिलक करे। यदि कोई जल के किनारे सन्ध्या-वन्दनादि करे, तो उसे जलसे ही तिलक लगाना चाहिये।— "जले स्थित्वा कर्म कुर्वन् जलेन तिलकं चरेत्।" (विष्णु-धर्मोत्तरे)॥

रुद्राक्ष-धारण—रुद्राक्ष माला धारण करके सन्ध्या पूजा करने की बड़ी महिमा है। बिना रुद्राक्ष धारण किये जप का फल सामान्य होता है और जप काल तक ही रहता है। "अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्र फलप्रदः।" कंठ में रुद्राक्ष माला इस मन्त्रसे धारण करें—"ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषु मानोऽश्वेषु रीरिषः। मानो वीरान् रुद्र भामितोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे॥"

कुशपवित्र-धारण—बांये हाथ की अनामिका के मूल में प्रादेशप्रमाण साग्र तीन कुशाकी अंगूठी (पवित्री) तथा वैसी थोड़ी कुशा की मार्जनी और वैसी ही दो कुशा की अंगूठी दाहिने हाथ की अनामिका के मूल में पहन कर सन्ध्या करने की विधि है।

पवित्री धारणका मन्त्र—"ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्।" परन्तु कुशा के अभाव में दोनों हाथों की अनामिका के मूल में सोने या ताम्बे की अंगूठी धारण करके भी सन्ध्या की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जिसके पिता और ज्येष्ठ भ्राता का स्वर्गवास हो गया हो, वह दाहिने हाथ की तर्जनी में चांदी की अंगूठी भी लगा सकता है।—"समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे। सव्ये चैव तथा त्रीन् वै बिभृयात् सर्वकर्मसु॥" (सुमन्तः)॥ "अनन्तर्गर्भितं साग्रं कौशं द्विदलमेवच। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित॥" (कात्यायनः)॥ "अनामिका-मूलदेशे पवित्रं धारयेद् द्विजः॥" (अत्रिः)॥ "दर्भाभावे स्वर्ण-रूप्य-ताम्रैः कर्मक्रियाः सदा।" (कातीयसूत्र-भाष्ये)॥ "उत्तरीयं योगपट्टं तर्जन्यां रजतं तथा। न जीवत्पितृकैर्धार्यं ज्येष्ठो वा विद्यते यदि॥" (प्रयोग पारिजाते)॥

जल-शुद्धि—(श्री गंगाजल से अतिरिक्त जल के लिये) अपने सामने भूमि पर त्रिकोण मंडल करके, उसे एक गोल मंडल से घिरे, फिर उस गोल मंड़ल को एक चतुष्कोण (चौकोर) मंडल से घेर देवे। फिर "एते गन्धपुष्पे ॐ आधारशक्त्यै नमः" इस मंत्र

से उस त्रिकोण मंडल के ऊपर गन्धपुष्प छोड़े। "फट्" कहके उस मण्डल के ऊपर जलाधार (पंचपात्र) रख, "नमः" कह के उस में जल डाले। फिर अंकुश मुद्रा ❀ के द्वारा पंचपात्र का जल स्पर्श करके कहे - "ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे, सिन्धु-कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥" बाद में ॐ कहके उसी जल में गन्धपुष्प देकर धेनुमुद्रा दिखलाये और मत्स्यमुद्रा के द्वारा दाहिने हाथ से उस जल को ढक कर दस बार प्रणव का जप करे। (जलशुद्धि में मुद्रा न दिखलाने से भी दोष नहीं होता)॥

आसन-शुद्धि— अपने दाहिने तरफ आसन के नीचे त्रिकोण मण्डल करके "एते गन्धपुष्पे ॐ ह्रीँ आधार-शक्तये कमलासनाय नमः" कहकर उस मण्डल पर गन्धपुष्प छोड़े। फिर दाहिने हाथ से आसन स्पर्श करके कहे— 'आसनमंत्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छंदः, कुर्मो देवता, आसनोपवेशने विनियोगः।

"ॐ पृथ्वि, त्वया धृता लोका, देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां नित्यं, पवित्रं कुरु चासनम्॥"

शिखा-बन्धन— 'छंदोग परिशिष्ट' और 'भृगु-संहिता' में कहा गया है—"सदोपवीतिना भाव्यं, सदा बद्धशिखेन तु। विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्॥" अर्थात् सर्वदा यज्ञोपवीत धारण करे और चुटिया बांधे रखे, बिना चुटिया बांधे और बिना जनेऊ पहने जो धर्मकर्म किया जाता है वह न करने के बराबर है।

❀ मुष्टिबद्ध दक्षिण हस्त से मध्यमा को सरलभाव से निकाल कर, तर्जनी के अग्रभाग को मध्यमा के मध्यपर्व में लगाने से 'अंकुशमुद्रा' होती है।

'पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड' में भी यही बात कही गयी है॥ तथा स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या, देवपूजा बिना शिखा बांधे कभी न करे--"स्नाने, दाने, जपे, होमे, सन्ध्यायां, देवतार्चने। शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन॥" (शौनकः) शिखा गायत्री मंत्र पढ़कर के बांधना चाहिये और फिर आचमन करके हृदय, बाहु, स्कन्ध को स्पर्श करे। —"स्मृत्वोंकारं च गायत्रीं निबध्नीयाच्छीखां ततः॥ पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कन्धौ च संस्पृशेत्॥" (नागदेवः)॥ पुरुष के शिखा ही आवरण है। जिसके शिखा नहीं है, वह अनावृत है, सुतरां रक्षाशून्य है—"एष रिक्तो वा अनपिहित स्तस्यैव तदेवपिधानं यच्छिखा॥" (श्रुतिः)॥

मार्जन-स्नान या मंत्र-स्नान—सूर्योदय से पहले, किसी नदी, झील, तालाब, बावली या कुआं पर जाकर अथवा घर में रखे हुये या तुरन्त के निकाले हुये जल को तीर्थादि आवाहन के द्वारा पवित्र करके, आदौ मंत्रोच्चारण-पूर्वक मिट्टी, गोबर, भस्म और कुशाओं से स्नान करने के उपरान्त, संकल्प करके डुबकी लगाके या सिर पर जल डाल कर स्नान करने को 'बैध-स्नान' कहते हैं। इस प्रकार के स्नान से शरीर निर्मल होता है और मन की भी शुद्धि होती है। परन्तु कालदोष से या शरीर अशक्त होने पर मनुष्य अवगाहन-स्नान नहीं कर सकते। इसे जान कर ऋषियों ने मंत्रो के द्वारा मार्जन-स्नान यानी मंत्र-स्नान का विधान किया है। शन्न आपः, द्रुपदादिव, आपोहिष्ठा, और ऋतं च सत्यं च इत्यादि अघमर्षण मंत्रों से सिर पर जल प्रोक्षण करने को "मन्त्र-स्नान" कहा गया है।—"कालदोषादसामर्थ्यान् न

शक्नोति यदाम्भसि। तदाज्ञात्वा तु ऋग्भिर्मन्त्रैर्दृष्टन्तु मार्जनम् ॥ शन्न आपस्तु द्रुपदा आपोहिष्ठाघमर्षणम्। एभिश्चतुर्भि र्ऋङ्मन्त्रै र्मन्त्रस्नानमुदाहृतम् ॥" (याज्ञवल्क्यः) ॥ "असामर्थ्याच्छरीरस्य देशकाला-द्यपेक्षया। मन्त्रस्नानादिकाः सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥" (नागदेवः) ॥

यह मंत्र-स्नान प्रति सन्ध्या के प्रारम्भ में अवश्य करना चाहिये, क्योंकि वैध-अवगाहन स्नान ही मुख्य स्नान है और तीनों कालों में स्नान के अनतर सन्ध्या करने की विधि रही है —"सम्यक् सन्ध्या-मुपासीत त्रिकालं स्नान-माचरन्" (नारदीये) ॥ परन्तु अधुना लोग वैध तथा त्रिकाल-स्नान करते नहीं। इस कारण सर्ववेदियों को ही मार्जन(मन्त्र)-स्नान के द्वारा पवित्र होकर सन्ध्योपासना आरम्भ करनी चाहिये।

यदि कहा जाय कि सामवेदी के इस मार्जन-स्नान को और वेदी लोग क्यों ग्रहण करें? इसका उत्तर यह है कि जो मन्त्र और अनुष्ठान अपनी शाखा में नहीं हैं और अपनी शाखा के विरोधी भी नहीं हैं, उनको पराई शाखा से लेकर अग्निहोत्रादि कर्मों के सदृश आदर के साथ प्रयोग करना चाहिये—"यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्य-मविरोधि च। विद्वद्भि स्तदनुष्ठेय-मग्निहोत्रादि-कर्मवत् ॥ (छन्दोगपरिशिष्टे महर्षि कात्यायनः) ॥ पारस्कर-गृह्यभाष्य में हरिहर जी ने कहा है कि, कर्कोपाध्याय, वासुदेव दीक्षित, रेणु दीक्षित प्रभृति पद्धतिकारों ने अपने अपने ग्रन्थ में परशाखीय यज्ञोपवीत-धारण-विधि लिखी है—"कर्कोपाध्याय-वासुदेव-दीक्षित-रेणुदीक्षित-प्रभृतयः स्वस्वग्रन्थे यज्ञोपवीत-धारणम् अत्रावसरे लिखितवन्तः।" गोभिलगृह्य में अन्नप्राशन संस्कार का उल्लेख न

रहने पर भी सामवेदियों ने परशाखा से लेकर ही अन्नप्राशन संस्कार करते ही हैं। "अमृतोपस्तरण-मसि स्वाहा" तथा "अमृत-पिधान-मसि स्वाहा" इन दो तैत्तिरीय आरण्यक के मंत्र भोजन कालीन आपोशन यानी आचमन यानी गण्डूष में सर्ववेदी ही व्यवहार करते हैं। त्रैकालिक आचमन के कृष्ण यजुर्वेदीय तीन मन्त्र "सूर्यश्च मा मन्युश्च", "आपः पुनन्तु पृथिवीं", "अग्निश्च मा मन्युश्च" इत्यादि सर्ववेदीय सन्ध्याओं में ही रहे हैं। इस कारण पितृदयिता में यानी सामवेदि-सन्ध्या में गृहीत मार्जन-स्नान सर्ववेदियों के ग्रहणीय और करणीय हैं।

प्रायश्चित्त— सूर्य्य निकलने से पहले प्रातःकाल की सन्ध्या, मध्याह्न समय बीत जाने के पहले दोपहर की सन्ध्या और सूर्य्यास्त होने से पहले सायंकाल की सन्ध्या आरम्भ करने का समय उत्तम है। परन्तु किसी कारण से यदि सन्ध्या आरम्भ करने का यह मुख्य-काल बीत जाय तो सूर्य को चौथा अर्घ्य-रूप अथवा १०८ बार या १० बार गायत्रीजप-रूप प्रायश्चित्त करके सन्ध्योपासना आरम्भ करना चाहिये—"सन्ध्या-कालः प्रागुदयाद् विप्रस्य द्विमुहूर्त्तकः ॥" (अग्निस्मृतौ) ॥ "सम-सूर्य्येऽपि मध्याह्ने मुहूर्त्ते सप्तमोपारि ॥" (स्मृतिः) "रवेरस्तमयात्पूर्वं घटि-कैका यदा भवेत्। सायं-सन्ध्यामुपासीत कुर्य्याद्धोमं च पूर्ववत्" ॥ (यमः) ॥ "अर्घ्यप्रदानतः पूर्व-मुदयेऽस्तमयेऽपि वा। गायत्र्यष्टशतं जाप्यं प्रायश्चित्तं द्विजन्मभिः ॥" (दक्षः) ॥ "आदित्योऽभ्युदयाद् यस्य सन्ध्योपास्ति-मकुर्वतः। स्नात्वा प्राणांस्त्रिरायम्य गायत्र्यष्टशतं जपेत्" ॥ (व्यासः) ॥ "सन्ध्याकाले त्वतिक्रान्ते स्नात्वा चैव यथाविधि। जपेदष्टशतं देवीं ततः सन्ध्यां समाचरेत्" ॥ (गौतमः) ॥

"गायत्रीं दशधा जप्त्वा पुनः सन्ध्यां समाचरेत्"। (मलमासतत्त्वे गायत्री-व्याख्या । यहां "अष्टशतं" शब्द से "अष्टोत्तरशतं" (१०८) जानें।

"गायत्रीं शिरसा सार्धमुक्त्वा व्याहृतिभिः सह। कालातीतविशुद्ध्यर्थं चतुर्थाऽर्घ्यं प्रदापयेत् ॥" (मदनपारिजात)।

(क) सन्ध्या के लिये काल

सन्ध्याकर्ममें निश्चित कालका लोप हो जाने पर प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रातःसन्ध्या का मुख्य काल सूर्योदय से पूर्व १ घड़ी से आरम्भ करके सूर्योदय के बाद एक घड़ी तक; मध्याह्न सन्ध्या का मुख्यकाल ठीक मध्याह्न समय से पूर्व एक घड़ी से आरम्भ कर के मध्याह्न समय के बाद एक घड़ी तक; और सायं-सन्ध्या का मुख्यकाल सूर्यास्त से पहले एक घड़ी से आरम्भ कर के सूर्यास्त के बाद एक घड़ी तक—"पूर्वापरे तथा सन्ध्ये सनक्षत्रे प्रकीर्त्तिते। समसूर्येऽपि मध्याह्ने मुहूर्त्ते सप्तमोपरि ॥" (स्मृतिवचन)। यदि मुख्यकाल में प्रातःसन्ध्यादि नहीं किया जा सके तो गौण काल में किया जा सकता है, परन्तु उसी स्थिति में अनुक्रम से (अर्थात् जिसके बाद जिस कर्म करने की विधि है, उसके अनुसार) करना चाहिये। "यदि दिवोदितानि कर्माण्यकृतानि, यावत् प्रहरं यामिन्याः तावत् क्रमेण सौरं (सूर्योपस्थानं) वर्जयित्वा कुर्यात्।" (गृह्यपरिशिष्टः)। मध्याह्न सन्ध्या पूर्वाह्न में भी की जा सकती है—"अनग्निराचरेत् कृत्यं मध्याह्नात् प्राग् विशेषतः" इति वशिष्ठवचनात् प्रातरपि मध्याह्नकर्मानुष्ठानम्।"—(रघुनन्दनः)। सायंसन्ध्या का गौणकाल अगले दिन प्रातःसन्ध्या का पूर्वकाल

पर्यन्त [परन्तु उससे पहले रात्रि का भोजन निषिद्ध है]। प्रातः-सन्ध्या और मध्याह्नसन्ध्या का गौणकाल सायंसन्ध्या के गौण काल तक [परन्तु उससे पहले दिन का भोजन मना है]। एक दिन की किसी भी सन्ध्या पतित होने पर दूसरे दिन उसे करने का नियम नहीं है—"प्रातःसन्ध्यायाः पतितत्वे तद्दिवसीय-सायंसन्ध्या-गौणकालकर्त्तव्यता, 'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्विप्रो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु' इत्यनेन तद्दिनकृत्यानधिकारोक्तेः। किन्तु पूर्वदिवसीय-सन्ध्यायाः परदिवसीय-कृत्या-धिकारित्वाप्रयोजकत्वेन पूर्वदिवसीयप्रातर्मध्याह्नसन्ध्ययोः परदिवसीय-सन्ध्याकाले न कर्त्तव्येतेति।"—(मलमासतत्त्वे गोस्वामि-टीका)। और—राष्ट्र का ध्वंस हो रहा हो, राजा के चित्त में क्षोभ हुआ हो अथवा अपना शरीर ही रोगग्रस्त हो जाय या जनन-मरण रूप अशौच प्राप्त हो जाय, तो इन कारणों से कभी सन्ध्याकर्म न बन सके तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं है—"राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्त्तौ सूतकेऽपि वा। संध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कथञ्चन॥" (जमदग्नि)।

संकल्प या प्रार्थना—संवर्त्त-स्मृति में केवल प्रातःसन्ध्या के प्रारंभ में हाथ जोड़ कर संकल्प करने को कहा गया है। यहां 'संकल्प' शब्द का अर्थ 'कामना' है यानी उसी मंत्र को पढ़ कर ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) की कामना करके प्रातःसन्ध्या करनी चाहिये। 'आह्निकप्रदीप' भिन्न किसी ग्रन्थ में मध्याह्न तथा सायंसन्ध्या में ऊह यानी परिवर्तन करके उस मंत्र को पढ़ने का कहीं प्रमाण नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र के भाष्यकार हरिहरने इस मंत्र का उल्लेख नहीं किया, परंतु संवर्त्त जी ने कहा है—"नत्वा तु पुण्डरीकाक्ष-मुपात्ताघ-प्रशान्तये। ब्रह्मवर्चस-कामार्थं प्रातः-सन्ध्या-

मुपास्महे ॥ इत्थं कृत्वा तु संकल्पं कुशानादाय पाणिना। नद्यां समुत्थतोयैस्तु गृहे वा कलशस्थितैः ॥"

सामान्यविधि के अनुसार नित्यकर्म का संकल्प नहीं है। सन्ध्या भी नित्यकर्म होने के कारण उसका भी संकल्प नहीं है। काम्य और नैमित्तिक कर्मों में तो संकल्प अवश्य कर्त्तव्य है। विशेष प्रमाण से स्नान, दान आदि नित्य कर्मों में संकल्प करना होता है—"संकल्पं च तथा कुर्यात् स्नानदानव्रतादिके। अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च" ॥ (बृहद्यम) ॥

प्राणायाम—प्राण+आयाम (आङ्-यम् + घञ्) प्राणायाम का अर्थ है प्राण वायु की यानी श्वास-प्रश्वास की गति विच्छेद—"श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः" (पतंजलिः) "प्राणो वायु-रिति ख्यात आयाम स्तन्निरोधनम्। प्राणायाम इति ख्यातो योगिनां योगसाधनम् ॥" (गन्धर्वतन्त्रे) ॥ सन्ध्या के अंगरुप प्राणायाम के बारे में कहा गया है कि, प्राणवायु को खींचने के समय, अन्दर में रोक कर और छोड़ने के समय प्रणव के साथ सात व्याहृतियां, गायत्री और गायत्री-शिर का तीन बार मन-ही-मन पाठ प्राणायाम कहा जाता है—"सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। त्रिः पठे-दायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥ (याज्ञवल्क्यः) ॥ कात्यायन ने कहा है—"दक्षिणे रेचयेद् वायुं वामेनापूरितोदरम्। कुम्भकेन जपं कुर्यात् प्राणायामो भवेदिति" ॥ अर्थात् बायें नाक से वायु खींच कर उदर को भरे, फिर दोनों नाक बन्द कर वायु को अन्दर रोके और अन्त में दाहिने नाक से धीरे धीरे निकाल दे। इन पूरक कुम्भक और रेचक के समय प्रणव के साथ सात व्याहृतियां, गायत्री-शिर का एक-एक बार

जप करे। इन तीनों से एक प्राणायाम होता है। "छन्दोग परिशिष्ट" में भी कहा गया है—"त्रिर्जपेदायत-प्राणः प्राणायामः स उच्यते।" इन प्रमाणों से पूरक, कुम्भक और रेचक के समय केवल जप की विधि मिल रही है। परन्तु व्यास जी ने, वृहस्पति ने तथा शङ्ख ने कहे हैं कि पूरक, कुम्भक, रेचक ये तीन प्राणायाम करे और पूरक के समय श्री ब्रह्माजी का, कुम्भक में श्री विष्णु जी का तथा रेचक के समय श्री शंकर जी का ध्यान करे।—"आदानं रोध-मुत्सर्गं वायोस्त्रिस्त्रिः समभ्यसेत्। ब्रह्माणं, केशवं, शम्भुं ध्यायेद् - देवा-ननुक्रमात्॥" और 'आह्निक प्रकाश, में याज्ञवल्क्य, पारिजात और रत्नाकर आदि के वचनों का उल्लेख करके पूरक करते समय नील कमलदल के समान श्याम-सुन्दर चतुर्भुज भगवान् विष्णु का नाभिदेश में ध्यान, कुम्भक करते समय कमल के आसन पर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्भुज ब्रह्मा जी का हृदय देश में ध्यान और रेचक करते समय स्फटिक के समान श्वेत वर्ण त्रिनेत्र महादेव जी का ललाट में ध्यान करने के लिये कहा गया है—"पूरके विष्णुसायुज्यं कुम्भके ब्रह्मणोऽन्तिकम्। रेचकेन तृतीयन्तु प्राप्नुयादैश्वरं पदम्॥" (योगियाज्ञवल्क्यः) "नीलोत्पलदलश्यामं नाभिदेशे प्रतिष्ठितम्। चतुर्भुजं महात्मानं पूरकेणैव चिन्तयेत्॥ कुम्भकेन हृदिस्थाने ध्यायेच्च कमलासनम्। ब्रह्माणं रक्तगौराङ्ग चतुर्वक्त्रं पितामहम्॥ रेचकेनेश्वरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं निर्मलं पापनाशनम्॥" (मदनपरिजात)। इस प्रकार ध्यान का दो भेद रहने के कारण जिसने जिस प्रकार से ध्यान करने का उपदेश आचार्य से प्राप्त किया है, उसके लिये उसी प्रकार से ही

ध्यान करना उचित है। परन्तु यह ध्यान काम्य है, अतः करना न करना इच्छाधीन है, क्योंकि 'देवि-भागवत' में श्रुति-स्मृति-पुराणादि कर्मों के आरम्भ में सगर्भ और अगर्भ प्राणायाम का उल्लेख किया गया है—"श्रुति-स्मृत्यादि-कर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः। अगर्भो ध्यान-मात्रं तु स चामंत्रः प्रकीर्त्तितः ॥" "आह्निकतत्त्व" में तो स्पष्टरुप से इस ध्यान को काम्य कहा है—"ब्रह्माणं, केशवं, शम्भुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्" इति बृहस्पति-विष्णुधर्मोत्तर-वचनात् ध्यानं काम्य-मित्याहुः।"

ऋष्यादि-स्मरण करने में क्रम—मंत्रों के ऋषिः, छंदः, देवता और विनियोग न जान कर मंत्र, पाठादि करने से पाप लगता है। इस कारण बुद्धिमान् ब्राह्मण यत्न के साथ इन चारों को अवश्य जानें—"अविदित्वा ऋषिं, छंदो दैवत्यं योगमेव च। योऽध्यापयेद् याजयेद् वा, पापीयान् जायते तु सः ॥" (व्यासः) ॥ "आर्षं, छन्दश्च दैवत्यं विनियोग स्तथैव च। वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विपश्चिता" ॥ (याज्ञवल्क्यः) ॥ "विनियोग" शब्द का अर्थ है—पुराकल्प में जिन कर्मों के लिए जिन मंत्रों का उदय हुआ था, उन मंत्रों का उन्हीं कर्मों के लिये प्रयोग यानी उन्हीं कर्मों में व्यवहार—"पुराकल्पे समुत्पन्ना मंत्राः कर्मार्थमेव च। अनेनेदं तु कर्त्तव्यं, विनियोगः स उच्यते" ॥ (याज्ञवल्क्य) ॥ 'यत्र कर्मणि चारब्धे जपहोमार्चनादिके। क्रियते येन मंत्रेण विनियोगस्तु स स्मृतः।' (संवर्त्तः)। ऋषिः, देवता, छंदः और विनियोग पढ़कर जल छोड़ने की विधि कही नही है। मन्त्र-प्रयोग के पहले इनके स्मरण करने का ही आदेश है—'निरुक्तं यत्तु मंत्रस्य समुत्पत्तिः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं, स्तुतिश्चैव ब्राह्मणं चाभिधीयते ॥ एवं

पंचविधं योगं जपकाले त्वनुस्मरेत्। होमे वान्तर्जले योगे स्वाध्याये याजने तथा॥" (याज्ञवल्क्यः)॥ "आर्षं छन्दो दैवतं च विनियोगविधिं स्मरेत्" (मदनपारिजाते संवर्त्तः) "आदौ देवतामृषिं छन्दः स्मरेत्" (शंखः) इसलिये विनियोग का पाठमात्र ही करना चाहिये, जल छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

"सर्वानुक्रमणिका" में महर्षि कात्यायन ने लिखा है—"ऋषि-दैवत-छन्दांस्यनुक्रमिष्यामः।" अर्थात् ऋषि, देवता और छंद के बारे में हम क्रम से कहेंगे। इसीलिये ऋग्वेदीय तथा यजुर्वेदीय मंत्रों के ऋष्यादि स्मरण में, प्रथम ऋषि, द्वितीय देवता, तृतीय छन्द और अन्त में विनियोग का उल्लेख होना चाहिये। परन्तु "छान्दोग्यब्राह्मण" में कहा गया है—"यो ह वा अविदितार्षेय-च्छन्दो-दैवत-विनियोगब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति, वा अध्यापयति, स्थाणुं वर्च्छति, गर्त्तं वा पद्यते, प्रमीयते स पापीयान् भवति"। इस कारण सामवेदीय मंत्रों के ऋष्यादि स्मरण में प्रथम ऋषि, द्वितीय छन्दः, तृतीय देवता और अन्त में विनियोग कहना चाहिये।

विशेष-आचमन—कृष्ण-यजुर्वेद के सूत्रकार महर्षि बौधायन जी ने आचमन के लिये कृष्ण-यजुर्वेद से तीन मंत्र लिये हैं। सर्व वेदी वाले भी आचमन में उन्हीं मंत्रों का प्रयोग करते हैं। सायणाचार्य जी ने भाष्य में प्रातःसन्ध्या के लिये "यद्-रात्रिया पाप-मकारिषं···रात्रिस्तद वलुम्पतु" और सायं-सन्ध्या के लिये "यदह्ना पाप-मकारिषं···अहस्तद वलुम्पतु" मंत्र कहा है। तैत्तिरीय-आरण्यक में भी वैसा ही पाठ रहा है। कृष्ण-यजुर्वेद में बहुलशः

'य्' के बदले में 'इय्' और 'व्' के बदले में 'उव्' पाठ देखा जाता है। "रात्रिया" में "इयाडियाच्" इत्यादि सूत्रों के द्वारा 'टा' स्थल में 'डियाच्' आदेश हुआ। वैसे ही परुष्णिया, असिक्निया भी हैं। इसके लिये सायणाचार्य ने कहा—"परुष्णया असिक्न्या इत्युभयत्र तृतीयाया-मत्तर-विश्लेषश्छान्दसः"। (यानी डियाच् आदेश) "तन्वादीनां छन्दसि वहुलम्" इस सूत्र के उदाहरणस्वरूप कहा गया है—जैसे "भूर्भुवः सुवः (स्वः), नमः शीघ्रियाय (शीघ्र्याय), पितावत्सानां पतिरघ्नियानाम् (अघ्न्यानाम्), वाहवोर्वलमस्तु (वाह्वोः), ऊरुवोरोजः (ऊर्वोः), तनुवा मे सह (तन्वा)"। इत्यादि॥

"दधिक्राव्णो अकारिषं"—मंत्र चारों वेदों में एक ही प्रकार से कहा गया है। 'अकारिषं' में 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्र के अनुसार 'इट्' का आगम हुआ।

मार्जनम्—'छन्दोगपरिशिष्ट' में कहा गया है—"शिरसो मार्जनं कुर्यात् कुशैः सोदकविन्दुभिः। प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च सावित्री च तृतीयिका॥ अव्देवत्यं त्र्यृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम्"॥ अर्थात् (१) ॐ कह के एक बार, (२) भूर्भुवः स्वः कह के एक बार, (३) तत्सवितुरित्यादि सावित्री पढ़ के एक बार, और (४) आपोहिष्ठा, यो वः शिवतमः और तस्मा अरं गमाम, यह तीन मंत्र पढ़ कर एक बार कुशाग्रों के द्वारा सिर पर जल-विन्दुओं का प्रोक्षण करे। 'ब्राह्मणसर्वस्व' में यजुर्वेदी के लिये विशेष यह कहते हैं कि, आपोहिष्ठा इत्यादि तीनों मंत्रों का एक-एक मंत्र से सिर पर जल का प्रोक्षण करना चाहिये—"आपो हिष्ठेत्यादिभिः

प्रत्येकं तिस्टभिर्माजनम् ।" याज्ञवल्क्य जी ने भी कहा है—"सर्व-तीर्थाभिषेकश्च उद्ध्वें संमार्जनाद् भवेत् ॥"

अघमर्षण—"ऋतं च सत्यं च" इत्यादि मंत्र केवल ऋग्वेद और कृष्ण-यजुर्वेद में हा है। सामवेद और शुक्ल-यजुर्वेद में नहीं है। कृष्ण-यजुः का पाठ है "रात्रिरजायत" और ऋग्वेद का पाठ है "रात्र्यजायत"। कृष्ण-यजुर्वेद, याज्ञवल्क्य जी का उद्गीर्ण (वमन) होने के कारण सब पद्धतिकारों ने उस पाठ को त्याग कर ऋग्वेद का ही पाठ ग्रहण किया है। वाचस्पति मिश्र ने "द्वैत-निर्णय" में स्पष्टतः कहा है –'तैत्तिरीयकस्य याज्ञवल्क्योद्गीर्णतया माध्यन्दिनै स्तदुक्तं न परिगृह्यते, किन्तु ऋग्वेदोक्तमेव अघमर्षणसूक्त-मादेयम्"।

अघमर्षण-सूक्त का देवता 'भाववृत्तं' या 'भाववृत्तिः' है—'भाव-वृत्तः' नहीं है। क्योंकि याज्ञल्क्य जी ने कहा है—"अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तन्तु दैवतम्"। 'सर्वानुक्रमणिका' में भी महर्षि कात्यायन जो ने कहा है—"माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्ति-रनुष्टुप् ।" 'पारस्कर गृह्यपरिशिष्ट' में भी "भाववृत्तिः" कहा है और 'आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट' में "भाववृत्तं" रहा है। सायणाचार्य ने भी "मधुच्छन्दसः पुत्रस्य अघमर्षणस्यार्षं, रात्र्यादीनां भावानां स्टष्टिप्रतिपादकत्वात् तादृग्रूपा एव वृत्तिः अर्थो देवता" ऐसे अर्थ किये हैं। वृत्+ भावे क्ति=वृत्ति (स्त्री), वृत्+भावे क्त=वृत्त (क्लीं) दोनों ही एकार्थक हैं।

अघमर्षण (अघ=पाप, मर्षण=क्षालन, त्याग) में गोकर्णा-कृति दाहिने हाथ में जल लेकर नासाग्र जल से स्पर्श किये, तीन

बार 'द्रुपदा मंत्र' और तीन बार 'ऋतं च सत्यं च' अघमर्षण-मंत्र पढ़ना चाहिये। क्योंकि याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—"द्रुपदान्तु-त्रिरावर्त्त्य तथा चैवा-घमर्षणम्"। दोनों मंत्र पढ़ने के लिये 'आश्वलायन-गृह्यपरिशिष्ट' में भी कहा गया है—"अथ गोकर्णवत् कृतेन पाणिना उदकमादाय नासिकाग्रे धारयन् अघमर्षण-सूक्तं द्रुपदा-मृचंच आवर्त्त्य" ॥ 'ब्राह्मणसर्वस्व' में भी कहते हैं "ततो मार्जनान्तरं, जलचुलुकं नासिकाग्रे निधाय, द्रुपदामंत्रम् अघमर्षण-मंत्रं च प्रत्येकं त्रिरावर्त्त्य" ॥

सूर्य्य-जलाञ्जलि-दान—यहां दोनों हाथों में यानी अंजली भर के जल लेकर, सूर्याभिमुख खड़े हो कर, "ॐ भूर्भुवः स्वः" सहित गायत्री-मंत्र पढ़ कर सूर्य को जल देने के लिये कहा गया है'—'उत्थायार्कं प्रति प्रोहेत् त्रिकेणांजलि-मंभसः" (कात्यायन)॥ यानी खड़े होकर त्रिक् अर्थात् (प्रणव, महाव्याहृति, और गायत्री) पढ़ कर, सूर्य की ओर अंजली भर जल छोड़े। "ततस्तिष्ठन् जलं गृह्य प्राङ्मुखोऽञ्जलिना स्मरेत्"। (आश्वलायनः) अर्थात् अघमर्षण के अनन्तर अञ्जली से जल लेकर सूर्य की ओर खड़े हो ब्रह्मतेज का स्मरण करे। "करभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमंत्रितम्। आदित्याभिमुख-स्तिष्ठं-स्त्रिरूर्ध्वं सन्ध्ययोः क्षिपेत्। मध्याह्ने तु सकृदेवं क्षेपणीयं द्विजातिभिः ॥" (व्यासः) अर्थात् दोनों हाथ से जल लेकर, सूर्य की ओर खड़ा होकर प्रातः और सायं-सन्ध्या में तीन बार गायत्री पढ़ कर तीन बार सूर्य्य की ओर जल छोड़े। मध्याह्न-सन्ध्या में एक वार गायत्री पढ़ कर एक वार जल छोड़ना चाहिए। जलांजली देते समय तर्जनी के मूल से

अंगूठा अलग रखकर खुले सीधे हाथों से अर्घ्य देना चाहिए क्योंकि तर्जनी के मूल से अंगूठा मिलाने से 'राक्षसी-मुद्रा' होती है —"मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत् । तर्जन्यंगुष्ठ-योगे तु 'राक्षसी-मुद्रिका' स्मृता ॥" (आह्निक-कारिका)॥ प्रातः और मध्याह्न दोनों सन्ध्याओं में खड़े होकर जलांजलि देना चाहिए, क्योंकि कात्यायन और याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि जिस कार्य में कष्ट अधिक होता है उसमें फल भी अधिक होता है—"यत्र-स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः । भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्रात्श्रेयो ह्यवाप्यते ॥" अतः कष्ट व असुविधा का ध्यान न रखकर खड़े होकर ही जलांजलि दे ॥

प्रातःकाल अर्घ्य देते समय मस्तक झुकाकर खड़ा होना चाहिये और मध्याह्नकाल में सीधे खड़े होकर अर्घ्य देना चाहिए। परन्तु सायंकाल में बैठकर ही पृथ्वी पर अर्घ्यजल गिराना चाहिए—'प्रातः प्रह्वः क्षिपेदप्सु मध्याह्ने ऋजु संस्थितः । अर्घ्यं प्रक्षेपणं कुर्यात् सायं तूपविशन् भुवि॥" (तैत्तिरीय संध्याभाष्य) प्रातःकाल और मध्याह्नकाल के अर्घ्य के समय जल में ही जल गिरावे। यदि जल न हो तो स्थल को भलीभाँति धोकर उसपर विधिपूर्वक जल गिराना चाहिए। सायंकाल में जल में अर्घ्यजल गिराने से रौरव नरक की प्राप्ति बतलायी गयी है—"जले त्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे तु तत् स्थले । सम्प्रोक्ष्य वारिणा सम्यक् पश्चादर्घ्यं यथाविधि ॥ उपविश्य तु सायाह्ने जले त्वर्घ्यं न निक्षिपेत् । निक्षिपेत् यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥" (तैत्तिरीय संध्याभाष्य) ।

यदि सन्ध्या का योग्य काल बीत गया हो तो इस मंत्र से प्रायश्चित्त-स्वरूप एक अधिक अर्घ्य (जलांजली) देना चाहिए—

"ॐआकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥"

उपस्थान—(१) "उदुत्यं" मंत्र के ऋषि प्रस्कण्व, छन्द गायत्री (अनुष्टु्प नहीं) देवता सूर्य हैं—"उदुत्यं जातवेदेति ऋषिः प्रस्कण्व उच्यते ॥ छन्दो गायत्र-मेवास्य सूर्यो दैवत-मेव च ॥" (व्यासः) ॥

(२) "चित्रं" मंत्र के ऋषि 'कुत्स' ('कौत्स' नहीं), छन्द त्रिष्टु्प्, देवता सूर्य हैं।—"चित्रं देवेति च ऋच ऋषिः कुत्स उदाहृतः। त्रिष्टुप् छन्दो दैवतं च सूर्य्योऽस्याः परिकीर्त्तितः ॥" (व्यासः) ॥ "सर्वानुक्रमणिका" तथा "आश्वलायन-गृह्यपरिशिष्ट" में भी "कुत्स ऋषिः" कहा गया है। सायणाचार्य ने भी "कुत्सस्यार्षं" लिखा है।

(३) "उद्वयं तमसस्परि" मंत्र के ऋषि 'प्रस्कण्व' हैं ('हिरण्यस्तूप' नहीं)। 'सर्वानुक्रमणिका' में तथा 'ब्राह्मणसर्वस्व' प्रभृति में 'प्रस्कण्व' ही कहा गया है।

(४) 'तच्चक्षुः' मंत्र का छंदः 'ब्राह्मीत्रिष्टुप्' है ('पुर उष्णिक्' नहीं)। 'सर्वानुक्रमणिका' और 'सायणभाष्य' में 'ब्राह्मीत्रिष्टुप्' ही कहा गया है। यह मंत्र 'शुक्ल यजुः' माध्यन्दिन शाखा, ३६ वें अध्याय के शान्ति-प्रकरण में आया है। इस मंत्र में ६७ अक्षर हैं। इस कारण उसे 'भूरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप्' छन्द वाला भी कहते हैं तथा कहा जा सकता है। "ऊनाधिके-नैकेन निचृद् भूरिजौ" सूत्र के अनुसार जिस छन्द के किसी भी चरण में एक अक्षर कम होता है उसे 'निचृत्' कहते हैं। और एक अक्षर

अधिक होने पर 'भूरिक्' कहते हैं। वैसे दो अक्षर कम होने से 'विराट्' और दो अक्षर अधिक होने से 'स्वराट्' कहते हैं।—"द्वाभ्यां विराट्-स्वराजौ"। इन प्रकार भेदों का उल्लेख न करने से भी कोई दोष नहीं होता। "पिङ्गलसूत्र" में एक सूत्र आया है—"तिस्रस्तिस्रः सनाम्ना एकैका ब्राह्म्यः"। इसकी 'वृत्ति' में कहा गया "...ता एव तिस्रस्त्रिष्टुभः (याजुषी, साम्नी, आर्ची चेति) सङ्गताः षट्षष्ट्यक्षरा एका ब्राह्मी त्रिष्टुप् भवति।" अर्थात् ६६ अक्षरों से 'ब्राह्मी त्रिष्टुप्' छन्द होता है। (याजुषी ११ अक्षर+ साम्नी २२ अक्षर + आर्ची ३३ अक्षर = ६६ अक्षर)॥

ऋग्वेद में एक मंत्र है—"तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्॥" (ऋ० ५।५।१६॥) इसका छन्दः 'पुर उष्णिक्' है, क्यों कि इसमें २८ अक्षर हैं।—"पुरउष्णिक् पुरतः" (पिङ्गल सूत्रे) "पुरतश्चेत् जागतः पादः (१२ अक्षर) गायत्रौ च (८+८ अक्षर) परतः, तदा पुर उष्णिक् नाम भवति।" (वृत्तिः)। इस मंत्र के ऋष्यादि के बारे में, 'आश्वलायन गृह्यपरिशिष्ट' में कहा गया है—"तच्चक्षुर्वशिष्ठः सूर्य्यः पुर उष्णिक्"। अर्थात् तच्चक्षुः इत्यादि मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, सूर्य देवता और पुर उष्णिक् छन्द हैं।—अनुमान होता है कि इसके अनुसार ही 'उपस्थान' के "तच्चक्षुः" मंत्र का छंद 'पुर उष्णिक्' बहुत सी पुस्तकों में लिखा गया है।

अङ्गन्यास—महाव्याहृति के वर्णों से तीन बार शरीर में न्यास करे अर्थात् उन्हें पढ़ कर हृदय, शिर, शिखा, सर्वगात्र (कवच) और दोनों हाथ (अस्त्र) को छुवे। शङ्ख और याज्ञवल्क्य

जी ने ॐ, भू, र्भुं, वः, और स्वः, इन पांच अक्षरों से हृदय, मस्तक, शिखा, सर्वगात्र, और दोनों हाथों में न्यास करना कहा है।—"प्रणवो भू र्भुवः स्वश्च अंगानिहृदयादयः। त्रिरावर्त्त्य पश्चादार्षं छन्दश्च दैवतम्। विनियोग स्तथा रुपं ध्यातव्यं क्रमतस्तु वै॥"

'आह्निक तत्त्व' और 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में कहा गया है "ॐ भूर्भुवः स्वरित्यक्षर-पंचकं, हृदय-शिरः-शिखा-सर्वगात्र-करद्वयेसु प्रत्येकं न्यसेत्। एवमपरं वारद्वयमिति॥"

अङ्गन्यास 'तत्त्व-मुद्रा' से करना चाहिये (दाहिने हाथ के अंगुष्ठाग्र में अनामिकाग्र का संयोग करने से 'तत्त्व-मुद्रा' होती है) क्यों कि 'गायत्री-तन्त्र' में कहा है कि "यतिस्तु पंचमुद्राभिर्न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः। गृही च यत्नतः कुर्यात् त्रिसन्ध्यं तत्त्वमुद्रया॥"

गायत्री के ऋषि आदि—गायत्री के यानी तत्सवितुरिति मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छन्दः हैं। जप, होम और उपनयन में उसका विनियोग होता है—"विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सविता तथा। जपहोमोपनयने, विनियोगो विधीयते॥" (संवर्त्तः) "विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सवितेष्यते। देवता विनियोगश्च, गायत्र्या जप उच्यते॥" (याज्ञवल्क्यः)

गायत्री का ध्यान— ऋग्वेदी और यजुर्वेदियों के लिये तीनों काल की सन्ध्या में एक ही ध्यान का भी नियम है, और तीन प्रकार के अलग-अलग ध्यान का भी सिद्धान्त है—"तां सर्वदैकरूपां ध्यायेत् अनुसन्ध्यम्, अन्यान्यरूपां वा॥" (आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे) "पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री, सावित्री मध्यमा स्मृता।

या भवेत् पश्चिमा सन्ध्या, विज्ञेया सा सरस्वती" ॥ (याज्ञवल्क्यः) "पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री ब्रह्माणी हंसवाहना। सन्ध्या माध्याह्निकी श्वेता सावित्री रुद्र देवता। सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती॥" (बृहत्पाराशरः)॥ "गायत्री तु भवेद्रक्ता सावित्री शुक्ल-वर्णिका। सरस्वती तथा कृष्णा उपास्या वर्ण-भेदतः॥" (व्यासः) आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट, आदित्य-हृदय, गायत्री-हृदय, ब्राह्मणसर्वस्व प्रभृति में ऋग्वेदी और यजुर्वेदी के लिये प्रातः ब्रह्माणी, मध्याह्न रुद्राणी, और सायं वैष्णवी का ध्यान कहा गया है।

'पारस्करगृह्य सूत्र' के भाष्यकार हरिहर जी ने कहा है—(प्रातः) ॐ उपात्तदुरितक्षयाय, प्रातःसन्ध्या-मह-मुपासिष्ये इति प्रतिज्ञाय,—"ॐ आयाहि वरदे देवि,। त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि। गायत्रिच्छन्दसां मात, र्ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते॥" इत्यावाहयेत्॥ (मध्याह्ने) ॐ उपात्तदुरितक्षयाय, मध्याह्नसन्ध्या-मह-मुपासिष्ये इति प्रतिज्ञाय,—"ॐ आयाहि वरदे देवि, त्र्यक्षरे रुद्रवादिनि। सावित्रिच्छन्दसां मात, र्रुद्रयोने नमोऽस्तुते॥" इत्यावाहयेत् (सायं) ॐ उपात्तदुरितक्षयाय सायं-सन्ध्या-मह-मुपासिष्ये इति प्रतिज्ञाय—"ॐ आयाहि वरदे देवि, त्र्यक्षरे विष्णुवादिनि। सरस्वतिच्छन्दसां मात, र्विष्णुयोने नमोऽस्तुते॥" इत्यावाहयेत्॥

गायत्री का आवाहन—"तेजोऽसि" मंत्र का 'धामदेवता' या 'आज्यं देवता' है। सर्वानुक्रमणिका में कहा गया है—"तेजोऽसि धामाज्यम्"। किसी किसी पुस्तक में 'शुक्रं देवता' लिखा है—वह अमूलक अर्थात् प्रमाण-रहित है।

गायत्री-जप—यजुर्वेदीय ब्राह्मण, तथा समस्त क्षत्रिय और वैश्य के लिये याज्ञवल्क्य जी का ही प्रमाण श्रेष्ठ माना

जाता है, क्यों कि शुक्ल-यजुर्वेद के प्रवर्त्तक योगी याज्ञवल्क्य जी के मतानुसार ही उनका धर्म्म, कर्म्म मुख्यतः किया जाता है। जपने में गायत्री मंत्र का स्वरूप याज्ञवल्क्य जी ने ऐसा कहा है - "ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥"—"प्रणवं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम्। गायत्री प्रणवश्चान्ते जप एवमुदाहृतः ॥" .याज्ञवल्क्यः आपस्तम्बश्च) ॥ यजुर्वेदी महर्षि पराशर जी ने भी दो प्रणवयुक्त गायत्री जपने को कहा है "तदाद्यं च तदन्तं च कुर्यात् प्रणव-सम्पुटम्। आद्यन्तरक्षितं कुर्या-दिति पराशरोऽब्रवीत् ॥" (बृहत्पा-राशर) ॥ मनु जी का भी कथन है—"ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावंते च सर्वदा।" भगवान् श्री शङ्कराचार्य जी भी कहते हैं प्रणव के सहित, तीन व्याहृतियों से युक्त और प्रणव जिसके अन्त में है वह गायत्री जपादि द्वारा उपासना करने योग्य है—"सप्रणवा व्याहृतित्रयोपेता प्रणवान्ता गायत्री जपादिभि-रुपास्या ॥" (गायत्री भाष्ये। ॥

यह महामंत्र गायत्री तीनपाद-वाली, और चौबीस अक्षर-वाली है; इस कारण इसके प्रति पाद में आठ अक्षर होते हैं—"यतश्चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री, अतः अष्टौ-अष्टौ अक्षराणि तस्या एकैकं पदम् ॥"(शतपथब्राह्मण)॥ प्रथम पाद "तत्सवितुर्वरेण्यं" में 'वरेण्यम्' को 'वरेणियम्' रूप में पढ़ना होता है, नहीं तो प्रथम पाद में आठ अक्षरों का सिद्धान्त व्यर्थ हो जाता है। अधिकन्तु गायत्री मंत्र के आदि द्रष्टा सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्माजी ने जिनको कि 'विश्वामित्र' भी कहते हैं—("विश्वस्य, जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः")— (याज्ञवल्क्यः), गायत्री के चौबीस अक्षरों के,

चौवीस देवताओं को प्रत्यक्ष करके, 'व' का यम 'रे' का वरुण, 'णि' का वृहस्पति, 'यम्' का पर्जन्य देवता कहा है । याज्ञवल्क्य जी ने भी वैसे ही कहा है—"पञ्चमं यम-दैवत्यं, वारुणं षष्ठ-मुच्यते । वार्हस्पत्यं सप्तमं तु, पार्जन्य-मष्टमं विदुः ॥" व्यास देव ने भी कहा है—"न्येसत् कण्ठे वरेणियम् " ॥ 'आश्वलायन-गृह्यपरिशिष्ट' में अङ्गन्यास के समय कहा गया है—"वरेणियं शिरसि स्वाहेति शिरसि ।" गायत्री-तंत्र और आगम-संदर्भ में कहते हैं—"णि-कारं विषणे न्यसेत्, यं-कारं कटिदेशे च ।" गायत्री-कवच में कहा है—"णि-कारम् ओष्ठदेशे तु, अधरे यं प्रकल्पयेत् ।" शारदा-तिलक में कहा गया है—"णि-कारं चिन्तयेद् योगी शुद्धस्फटिक-सन्निभम् । अभक्ष्य-भक्षणं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । य-कारं तारका-वर्णं विन्दुशेष-विभूषितम् । योगिनां वरदं ध्यायेद् ब्रह्महत्या-विनाशनम् ॥ 'देवीभागवत' में भी—"णि-कार ऊर्द्ध्व-मोष्ठं तु यं-कार स्त्वध-रोष्ठकम् ।" कहा गया है। और 'प्राणतोषणीकार' ने व्याख्या की है—"णियमित्यस्य पृथक्त्वेन चतुर्विंशत्यक्षरत्वम् ।"

फिर इसके बारे में विशेष सूत्र भी है— "इयादिपूरणः" —पाद इत्यनुवर्त्तते । इयादिः पूरणो यस्य स इयादिपूरणः । आदि-शब्देन उवादयो गृह्यन्ते । तत्रायमर्थः—यत्र गायत्र्यादिच्छन्दसि पादस्य अक्षरसंख्या न पूर्यते, तत्र इयादिभिः पूरयितव्या । यथा—"तत्स-वितुर्वरेणियम्, दिवं गच्छ सुवः पत ।" (वृत्तिः) । अर्थात् जिस चरण में अक्षर-संख्या पूर्ण नहीं होती, उसमें 'य्' के बदले में 'इय्' 'व्' के बदले में 'उव्' इत्यादि उच्चारण करके अक्षर-संख्या पूर्ण करना चाहिये । जैसे गायत्री के प्रथम चरण में सात अक्षर रहने के कारण 'वरेण्यं' को 'वरेणियम्' उच्चारण करके

आठवां अक्षर पूर्ण करना होगा; "सुपर्णोऽसि गरुत्वान्...दिवं गच्छ स्वः पत" (शु० यजुः० १२ अ० धृति छन्दः) इत्यादि मंत्र में एक अक्षर कम होने से 'स्वः' को 'सुवः' कहना पड़ेगा। भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने बृहदारण्यक-भाष्य में इसी सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। वे वहां स्पष्टतः कहते हैं कि —"य"कार के द्वारा अष्टत्व-संख्या की पूर्ति करे—"य-कारेणै-वाष्टत्व-पूरणम्।"

'वरेणियम्' न कहने से गायत्री चौबीस अक्षर-वाली नहीं होती। प्राणायाम, मार्जन, सूर्य्य-जलांजलि-दान तथा जप में 'वरेण्यं' को 'वरेणियम्' पढ़े।

गायत्री के एक-एक पाद को मन-ही-मन अलग-अलग उच्चारण करते हुये जपादि करना चाहिये। आचार्यपाद भगवान् श्री शंकर ने 'गायत्री-भाष्य' में कहा है कि, पादच्छेद करके उच्चारण की हुई गायत्री ब्रह्महत्या को भी दूर करनेवाली है, और बिना पादच्छेद के उच्चारण करने से ब्रह्महत्या को देने-वाली होती है—"भिन्नपादा च गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति। अभिन्न-पादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति॥" 'विश्वामित्र कल्प' में भी कहा गया है—"भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्या-प्रणाशिनी। अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति।

गायत्री मन-ही-मन जपना चाहिये। जिह्वा और ओंठ को न हिला कर, शिर और ग्रीवा को न चला कर, यानी स्थिर रख कर तथा दांत को न दिखला कर यानी ओंठों को बन्द रख कर गायत्री जपना चाहिये, क्योंकि यक्ष, राक्षस, पिशाच, सिद्ध और विद्याधर, ये गायत्री का प्रभाव खींच लेते हैं, इसलिये गुप्त

भाव से यानी मन-ही-मन गायत्री का जप करे—"ओङ्कारं व्याहृतीस्तिस्रो गायत्रीं त्रिपदां तथा। मनसैवमनुस्मृत्य वेदादिक-मुपक्रमेत् ॥" (शौनकः)॥ "जपेत्तु मनसा मंत्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत्। न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥ यक्ष-रक्षः-पिशाचाश्च सिद्ध-विद्याधरागणाः। यस्मात् प्रभावं गृह्णन्ति तस्माद् गुह्यं तु कारयेत् ॥" (याज्ञवल्क्यः)॥ प्रातः, मध्याह्न और सायं सावित्री का मानस-जप करना चाहिये—"सायं प्रातश्च मध्याह्ने सावित्रीं वाग्यतो जपेत्।" (शङ्खः)॥ नोच्चैर्जप्यं बुधः कुर्यान्निचैः कुर्यादतन्द्रितः। समाहितमना तूष्णिं मनसा वापि चिन्तयेत्।" (अग्निपुराणे)॥ प्रातःकाल हाथ को सीधा रखके अंगुलियों को ऊपर की ओर करके, सायंकाल को हाथ उलटा करके, तथा मध्याह्न में हाथ को हृदय के समीप रखके जप करे—"कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः, सायं चाधोमुखौ करौ। मध्ये तिर्यक्करौ प्रोक्तौ, जप एव-मुदाहृतः॥" (शौनकः)। प्रातःकाल हाथ को नाभि के समीप, मध्याह्न में हृदय के समीप और सायंकाल में नासिका के समीप करके जप करना चाहिये—"प्रातर्नाभौ करं कृत्वा, मध्याह्ने हृदि संस्थितम्। सायं जपति नासाग्रे, जपस्तु त्रिविधः स्मृतः॥" (धर्म-प्रवृत्तिः)॥ सूर्य की ओर मुख करके सवेरे और दोपहर को आसन पर बैठ, और सायंकाल आसन पर एक पैर से खड़े होकर, एकाग्रचित्त हो, ध्यान लगाये, सूर्य की ओर देखते हुये, गायत्री का जप करना चाहिये—"प्रातर्मध्याह्नयो स्तिष्ठन् गायत्री जप-मारभेत्। उद्ध्वजानुस्तु सायाह्ने ध्यानालोकन-तत्परः॥" (धर्म-प्रवृत्तिः)। "दर्भेष्वासीनः" (बौधायनः)। "कुशमयमासन-

मासीनः" (शङ्खः)। गायत्रीका ध्यान करते हुये जप करना चाहिये—"देवतां ध्यायन् जपं कुर्यात्" (शङ्खः) सदा दाहिने हाथ को कपड़े से ढक कर जप करने से जप सफल होता है, नहीं तो निष्फल होता है। इस कारण जापक लोग जप के लिये 'गौमुखी' व्यवहार करते हैं—"वस्त्रेणाच्छादयेद्धस्तं दक्षिणं यः सदा जपेत्। तस्य स्यात् सफलं जाप्यं तद्धीन-मफलं स्मृतम्। अतएव जपार्थं सा गोमुखी क्रियते जनैः ॥" (वृद्ध मनुः) गायत्री वेदमूल है और वेदगान पर्वों पर होता है। इस कारण गायत्री का जप पर्वों पर करना प्रशस्त (श्रेष्ठ) है। परन्तु काम्य जप माला पर ही करना प्रशस्त है; माला के अभाव से पर्व पर भी किया जा सकता है—"पर्वभिस्तु जपेद्देवीं, माला काम्यजपे स्मृता। गायत्री वेदमूला स्याद्, वेदः पर्वसु गीयते ॥" (गायत्री-कल्पे)। 'शैवागम' में भी कहा है—"नित्यं जपं करे कुर्यान् न तु काम्यं कदाचन। काम्यमपि करे कुर्यात् मालाभावे च सुन्दरि।" अङ्गुलियों को मिलाकर हथेली की ओर कुछ टेढ़ी करके जप करना चाहिये। अङ्गुलियों के अलग-अलग रहने से जप की हानि होती है—"अंगुलीर्न वियुंजीत किंचिदा-कुंचिते तले। अंगुलीनां वियोगाच्च छिद्रं च स्रुवते जपः ॥" (मदनपारिजाते)।

अनामिका के मध्य और मूल पूर्व, कनिष्ठा के मूल, मध्य और अग्र पर्व अनामिका और मध्यमा के अग्र पर्व, एवं तर्जनी के अग्र, मध्य और मूल पर्व को अङ्गुष्ठ के अग्र पर्व द्वारा यथाक्रम से स्पर्श करते हुये जप करना चाहिये—"तिस्रोऽगुल्य स्त्रिपर्वाणो मध्यमा चैकपर्विका। अनामामध्यमारभ्य जप एव-मुदाहृतः ॥" (शङ्खः)॥ मंत्र जप की गिनती अवश्य रखनी चाहिये; क्योंकि

बिना संख्या का जप आसुर जप कहलाता है—"असंख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद् गणयेद् ध्रुवम् ॥" (वृ० प० सं०)।

स्फटिक-रुद्राक्षादि माला के द्वारा भी गायत्री जप किया जा सकता है—"स्फटिकेन्द्राक्ष - रुद्राक्षैः पुत्रञ्जीव-समुद्भवैः । अक्षमाला तु कर्त्तव्या, प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तरा ॥" (याज्ञवल्क्यः) सुमेरु को छोड़कर १०८ मणियों की माला सबसे उत्तम है। माला को अनामिका अंगुली पर रख कर, अंगूठे से फेरना चाहिये। माला से जप करने में तर्जनी का स्पर्श नहीं होना चाहिये। सुमेरु का उल्लंघन नहीं करे। दुबारा फेरते समय सुमेरु के पास से माला घुमा-घुमा कर जप करना चाहिये। "मध्यमांगुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् । तद्वै मेरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलङ्घयेत् ॥" (गायत्री-कल्प) "अना-मायां न्यसेत् मालां ज्येष्ठेनावर्तयेत् क्रमात् । भुक्तिमुक्ति-प्रदा साऽयं मात्रिका-गणना-क्रमः ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु कुर्यादुत्तमकर्मणि । जपकाले सदा विद्वान् मेरुं नैव विलंघयेत् ॥ परिवर्त्तन-काले च शंघट्टं नैव कारयेत् । एवं सर्वं परिज्ञाय मालायां जप-मारभेत् ॥" (शैवागमे)॥

जप करते समय, शिर पर वस्त्र तथा हाथ नहीं रखना चाहिये। जप के समय कांपने से हानि, ऊंघने से दुःख, बोलने से रोग, माला गिरने से नाश और माला का सूत टूटने से मृत्यु होती है। इस कारण सावधान होकर माला से जप करना चाहिये। जप करते समय यदि बोलना पड़े, तो दाहिने कान और नाक को स्पर्श कर श्री विष्णु जी को स्मरण करके फिर जप प्रारम्भ करना चाहिये। क्योंकि "गंगा च दक्षिणे श्रोत्रे नासिकायां हुताशनः । उभयोः स्पर्शने चैव तत्क्षणादेव

शुध्यति ॥" (पराशरः)।

आसन पर कुशोदक का प्रोक्षण न करके गायत्री जपने से इन्द्र जप का फल हर लेता है—"अप्रोक्षित-जपस्थाना-च्छक्रो हरति तज्जपम्।" (गायत्री-पटले) ॥ इस कारण व्यास जी ने कहा है—"धृत्वा पवित्रं, सम्प्रोक्ष्य जपस्थानं कुशोदकैः ॥" 'पारस्करगृह्य सूत्र' में ब्राह्मण को गायत्री सावित्री, क्षत्रिय को त्रिष्टुप् सावित्री और वैश्य को जगती सावित्री का उपदेश करने की भी विधि है; और फिर सबके ही लिये भी गायत्री सावित्री कही गई है—"सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः। त्रिष्टुभ छं राजन्यस्य, जगतीं वैश्यस्य, सर्वेषां वा गायत्रीम् ॥" (का० २ क० ३)।

(१) गायत्री सावित्री—(ब्राह्मण के लिये, अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों के लिये)—गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवता, गायत्रीछन्दो, गायत्री-जपे विनियोगः।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥ (वरेण्यं को वरेणियम् कहे)

व्याख्या—(यः परमेश्वरः) ॐ (अ उ म्-सृष्टिस्थितिसंहारार्थं ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-रूपधारी), भूः (भू-रूपः), भुवः (भुव-रूपः), स्वः (स्व-रूपः), यः (परमेश्वरः), नः (अस्माकं सर्वेषां संसारिणां), धियः (बुद्धीः) प्रचोदयात् (धर्म्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयति), सवितुः (अनन्त-ब्रह्माण्डानां सर्वभूतानां च प्रसवितुः) देवस्य (दीप्ति-क्रीडायुक्तस्य, परमेश्वरस्य) तत् (वेदादि-निखिलसत्शास्त्र-प्रसिद्धं, स्वयंप्रकाशरूपं, तापत्रयनाशनं, जन्ममृत्युनिवारणं) वरेण्यं (वरणीयं

-तापत्रयपीड़ितैः जन्ममृत्युभीरुभिः तन्निरासाय उपासनीयं) भर्गः (सर्व-दुःखानां सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भर्जनसमर्थं तेजः-स्वयंज्योतिः पर-ब्रह्मात्मकं तेजोमण्डलं) धीमहि (सोऽहमस्मीत्यनेन चिन्तयामः)।—

जो परमेश्वर जगत् की सृष्टि-पालन और प्रलय के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारते हैं, जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग रुप से विराज रहे हैं यानी त्रिभुवन के यावतीय पदार्थ ही जिनकी मूर्त्ति है, जो हम संसारियों की बुद्धि को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के विषयों में लगाते हैं, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड और अनन्त कोटि प्राणियों का स्रष्टा, स्वयं-प्रकाश, जगन्निर्माणादि-रुप-क्रीड़ाशील उस परमेश्वर की, वेदादि सम्पूर्णसत्शास्त्रों में सुप्रसिद्ध, नित्यप्रकाश-स्वरूप, आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधि-भौतिक इन त्रिविध पापों का नाशक, जन्ममृत्युरूप संसार-सागर से पार लगानेवाले तथा दुःख-पीड़ित संसारी-जीवों से संसार-पार जाने के निमित्त उपासना करने योग्य, सारे दुःख, सारे पाप और सारे जन्म-मृत्यु के चक्करों से छुटानेवाले स्वयंज्योतिः परब्रह्मरूपतेज का हम अभेदात्म-बुद्धि से ध्यान करते हैं।

(२) त्रिष्टुप् सावित्री (क्षत्रिय के लिये)—त्रिष्टुप् सावित्र्या बृहस्पतिर्ऋषिः, सविता देवता, त्रिष्टुप् छन्दो, जपे विनियोगः।

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः, पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु॥

व्याख्या— हे देव सवितः, यज्ञं प्रसुव (प्रकर्षेण प्रेरय)। यज्ञपतिं (यजमानं) भगाय (सौभाग्याय) प्रसुव। किं च दिव्यः (दिवि भवः स्वर्गस्थः) केतपूः (केतं परचित्ते वर्त्तमानं ज्ञानं पुनाति शोधय-

तीति केतपूः) गन्धर्वः (गां वाचं धारयतीति गन्धर्वः—सविता, सूर्य्यः) नः (अस्माकं) केतं (परचित्तवर्त्ति ज्ञानं) पुनातु (ब्रह्मविवर्त्तनेन शोधयतु)। वाचः पतिः (वाण्याः पतिः सूर्य्यः) नः (अस्माकं) वाचं स्वदतु (स्वादयतु, अस्मदुक्ता वाक् तस्मै रोचतामित्यर्थः) ।—हे सूर्यदेव! आप यज्ञ को हमारे पास भेजिये। जो व्यक्ति यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होता है, उसे सौभाग्यशाली कीजिये। स्वर्ग में रहनेवाले, पराये ज्ञान को शुद्ध करनेवाले, वाक्य को धारण करनेवाले, वह सविता हमारे ज्ञान को ब्रह्मज्ञान में परिणित करके विशुद्ध करें, और वाक्यों का अधिष्ठाता वह सविता हमारी वाणी को, अपनी प्रीतिकर कर लेवें।

(३) जगती सावित्री (वैश्य के लिये)—जगती सावित्र्याः प्रजापतिर्ऋषिः, सविता देवता, जगतीच्छन्दो, जपे विनियोगः।

ॐ विश्वा रूपाणि प्रतिमुंचते कविः, प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। वि नाक-मख्यत् सविता वरेण्यो-ऽनु प्रयाण-मुषसो विराजति ॥

व्याख्या—कविः (विद्वान्) वरेण्यः (पूजनीयः) सविता (सूर्यः) विश्वा (विश्वानि, सर्वाणि) रूपाणि (वस्तूनि) प्रतिमुंचते (प्रकाशयति) । द्विपदे (मनुष्यादये) चतुष्पदे (गवादये) भद्रं (कल्याणं) प्रासावीत् (प्रेरितवान्)। नाकं (स्वर्गं) व्यख्यत (व्यख्यत्—प्रकाशितवान्)। उषसः (ऊषाकालस्य) प्रयाणं (गमनम्) अनु (पश्चात्) विराजति (प्रकाशते) ।—सर्वज्ञ और पूजनीय सूर्यदेव, सम्पूर्ण वस्तुओं को प्रकाशित कर रहे हैं; मनुष्यादि और गवादि के लिये कल्याण भेजा है, स्वर्ग का प्रकाश किया है और ऊषाकाल चले जाने पर स्वयं प्रकाश पाता है।

जप के समय गायत्री में प्रणव लगाने के बारे में तीन प्रकार के सिद्धान्त देखे जाते हैं। जैसे—

(१) (एक प्रणव लगा कर गायत्री जपने की विधि।)

'छन्दोगपरिशिष्ट' में कहा गया है—"प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च सावित्री च तृतीयका"। अर्थात् पहले प्रणव (ओं), उसके बाद भूर्भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियां, तथा उसके पश्चात् सावित्री मंत्र ("तत्सवितुः···प्रचोदयात्")। 'छन्दोगपरिशिष्ट' सामवेद का सूत्र-ग्रन्थ है। इस कारण सामवेदियों के लिये श्रेष्ठ प्रमाण है। अतः उनको एक प्रणवयुक्त गायत्री-मंत्र जपना चाहिये।

मनु-भगवान् भी वैसे ही कहते हैं—"एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्वकम्। सन्ध्ययोर्वेदविद् विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥"

पद्मपुराण स्वर्गखण्ड में व्यास भगवान् ने कहा है—"ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात् तदुत्तरम्। एष मंत्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः॥ योऽधीते ऽहन्यहन्ये तां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥" (५३।५६, ५७) अर्थात् पहले 'ओं', उसके बाद 'ब्रह्म' (तीन महाव्याहृतियां) और उसके पश्चात् गायत्री-मंत्र ('तत्सवितुर्वरेण्यं·· प्रचोदयात्')—इन सबको मिलाकर यह महायोग नामक मंत्र बनता है, जो सार से भी सार बतलाया गया है। जो ब्रह्मचारी प्रतिदिन इस वेदमाता गायत्री का अर्थ समझ कर जप करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में कहते हैं—"ॐपूर्वाः व्याहृतीः सावित्रीं च"। इसके भाष्य में कहा गया है—"पूर्वमोङ्कारं ततस्तिस्रो व्याहृतीः समस्ताः ततः सावित्रीम्। एवमेतत् त्रितयम्।" अर्थात् पहले 'ओं'

उसके बाद 'भू र्भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियां, और उसके पश्चात् सावित्री-मंत्र इन तीनों को मिला कर के जपना चाहिये। यह गृह्यसूत्र ऋग्वेदियों का श्रेष्ठ प्रमाण होने के कारण उनको भी एक प्रणवयुक्त गायत्री-मंत्र ही जपना कर्त्तव्य है।

(२) दो प्रणव लगाकर गायत्री जपने के लिये योगी याज्ञ-वल्क्य, महर्षि पाराशर तथा भगवान् श्री शंकराचार्य महाराज के सिद्धान्त पहले ही दिखा दिया गया है। वह सिद्धान्त यजुर्वे-दियों के लिये है।

(३) तीन प्रणवयुक्त गायत्री जपने की बिधि 'गायत्री-तंत्र' और "बृहत्पाराशरसंहिता" में मिलती है। जैसे—"प्रणवो भू र्भुवः स्वश्च पुनः प्रणव-संयुतम्। अन्त्योङ्कार-समायुक्तं मन्यन्ते क्व-योऽपरे ॥" (वृहत्पाराशरे) ॥ "प्रणवत्रय-संयुक्तम् ब्राह्मणेषु प्रकी-र्त्तितम्। क्षत्रादौ परमेशानि शस्यते प्रणवद्वयम् ॥" (गायत्रीतंत्र, प्रथमपटले) "प्रणवत्रय-संयुक्तम् गायत्रीं प्रजपेत्तु यः। गायत्र्याः फल-माप्नोति अन्यथाऽरण्यरोदनम् ॥" (गायत्रीतंत्र, द्वितीये पटले) परन्तु इस पर 'प्राणतोषणीकार' ने कहा है—"यत्तु गायत्री-तन्त्रस्य प्रथमपटले द्वितीयपटलेऽपि प्रणवत्रययुक्त - गायत्रीकथनं, तत् प्रबलकलौ तत्पुटितत्वाभिप्रायेण।" अतएव प्रबल-कलि में तीन प्रणव लगा कर गायत्री का जप करना होगा। इस समय तो कलि शैशवावस्था में मात्र है।

"धियो यो नः प्रचोदयाद्" का उच्चारण

'याज्ञवल्क्य-शिक्षा' में कहा गया है—"पादादौ च पदादौ च, संयोगावग्रहेषु च 'जः' शब्द इति विज्ञेयो, यो ऽन्यः स 'य' इति

स्मृतः ॥" अर्थात् पाद के आदि में, पद के आदि में, सन्धि में तथा समासान्तर्गत पदच्छेद के आदि में 'य' का उच्चारण 'ज' होता है। अन्यत्र 'य' है। इस वचन के अनुसार "धियो यो नः प्रचोदयात्" पाद का पाठ "धियो जो नः प्रचोदयात्" होना चाहिये था। परन्तु 'निर्वाणतन्त्र' तृतीय पटल में गायत्री-मंत्र की महिमा कहने के समय इसके बारे में कहा गया है—"अन्त्य-य-कारयोः स्थाने 'ज' इति च यः पठेत्। स चण्डाल इति ख्यातो, ब्रह्महत्या दिने दिने ॥" अर्थात् गायत्री के तीसरे पाद जो 'य' है उसे जो 'ज' पढ़ता है, वह चण्डालरूप है और दिन-दिन उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। इस विशेष वचन-बल से "यो नः" पाठ ही कर्त्तव्य है।

आवर्त्तन—महर्षि हारीत ने कहा है कि, गायत्री जपने के बाद ऋष्यादि स्मरणपूर्वक "सूर्य्यस्या-वृतमन्वा-वर्त्ते" (शु० यजु० ७.२६) मंत्र पढ़ कर दक्षिणावर्त से घूमकर आसन पर बैठे—"गायत्री-जपानन्तरं सूर्य्यस्येत्यावर्त्त्येति हारीत-वचनात् दक्षिणावर्त्तेन परिवृत्त्योपविशेत्। तत्र सूर्य ऋषिः, सूर्यो देवता, यजुष्टात् छन्दो नास्ति, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः। मंत्रो यथा—सूर्य्यस्यावृतमन्वा-वर्त्ते।" (ब्राह्मण-सर्वस्वे)।

वेद में तीन प्रकार के मंत्र हैं—ऋक्, यजुः, साम। (ऋच् स्त्री-लिंग है; यजुस् और सामन् क्लीव-लिंग हैं)। इसीलिये वेद का एक नाम 'त्रयी' है। अथर्ववेद ऋक्प्रधान है; शान्ति और अभिचारों में लगनेयोग्य ऋक् ही अथर्ववेद का विषय है।

महर्षि जैमिनि जी के मत में, गायत्र्यादि-छन्दवाले मन्त्रों

का नाम 'ऋक्' है, गायन करनेयोग्य मंत्रों का नाम 'साम' है और जो मंत्र छन्दवाले भी नहीं तथा गायन के विषय भी नहीं, उनका नाम 'यजुः' है—"तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थितिः। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्दः।" इसी कारण से ऊपर लिखे हुये "आवर्त्तन्-मंत्र" के बारे में कहा गया है—"यजुष् ट्वात् छन्दो नास्ति।"

परन्तु कोई-कोई यजुः-मंत्रों का भी छन्द मानते हैं। इस लिये सायणाचार्य ने कहा है—"छन्दस्तु मंत्राणाम् इषेत्वादीनां अनियताक्षरत्वात् नास्त्येव। येतु यजुषामपि छन्द इच्छन्ति, तैः कात्यायनोक्त-सर्वानुक्रमणिकायाः पंचमाध्याय-मभ्यस्य तद्द्वारेण तत्तन्मंत्रच्छन्दोऽनुसन्धेयम्।" परन्तु इस कथन से आचार्य सायण जी के अपने मत से भी यजुः मंत्रों का छन्द नहीं माना गया।

वैदिक छन्दः २१ प्रकार के हैं--गायत्री, उष्णिक् (उष्णिह्), अनुष्टुप् (भ्), बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् (भ्), जगती; अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति तथा उत्कृति। इनमें से गायत्री में २४ अक्षर, उष्णिक् में २८, अनुष्टुप् में ३२, बृहती में ३६ अक्षर हैं। इसी रीति से ४, ४, अक्षर बढ़ कर 'उत्कृति' तक छन्दः हुये।

विश्वे देवाः या विश्वदेवाः—विश्वेदेवाः नहीं—

'अमरकोष' में "आदित्य-विश्ववसवः" रहने के कारण 'विश्व' शब्द ही गणदेवता-विशेष की संज्ञा यानी नाम है--'विश्वेदेव' यह समस्त पद नहीं। "विश्वेषां देवानां श्राद्धं" इत्यादि प्रयोग के

अनुसार 'विश्व' शब्द, श्राद्धदेवताख्य गण-देवताओं की संज्ञा (नाम) होने पर भी, आगमिक सर्वनाम है। उसका प्रथमा का बहुवचन 'विश्वे' होता है। प्रथमा और द्वितीया का 'अलुक'-विधायक सूत्र किसी भी व्याकरण में नहीं है। इस कारण 'विश्वेदेवाः' पद को 'अलुक'-समासनिष्पन्न कह कर कैसे सिद्ध किया जा सकता है? पाणिनीय 'स्वर-प्रक्रिया' में "बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्" सूत्र की वृत्ति में कहा गया है--- "बहुव्रीहौ विश्व-शब्दः पूर्वपदभूतः संज्ञायाम् अन्तोदात्तः स्यात्। विश्वकर्मा विश्वदेवः। बहुव्रीहौ किम्? विश्वे च ते देवाश्च विश्वदेवाः। संज्ञायां किम्? विश्वदेवः।" इससे स्पष्टतः ज्ञात हो रहा है कि क्या संज्ञा या असंज्ञा में, समासनिष्पन्न होने पर 'विश्वदेव' ही होता है। 'वैश्वदेवं ततः कुर्य्यात्", "अहमादित्यै-रुत विश्वदेवैः" (देवीसूक्ते), "वैश्यो वैश्वदेवः" (तै० सं० २।६।३) "वैश्वदेवेन यजेत" (तै० ब्रा० २।४।१०), "वैश्वदेवे विकल्प इति" (मीमांसादर्शन १।४।१३) इत्यादि प्रयोगों से भी यही सिद्ध हो रहा है।

सूर्य्यार्घ्य-दान तथा सूर्य्य-प्रणाम — गायत्री--विसर्जन के अनन्तर सामवेदी-विप्र, पुराण शास्त्रों के अनुसार सूर्यार्घ्य देकर सूर्य-प्रणाम करते हैं। "यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि च। विद्वद्भि-स्तदनुष्ठेय-मग्निहोत्रादि-कर्मवत् ॥" अर्थात विद्वानों का कर्त्तव्य है कि जो मंत्र और अनुष्ठान अपनी शाखा में न हों, और अपनी शाखा के विरोधी भी न हों, उन्हें परायी शाखा से लेकर अग्निहोत्रादि कर्मों के सदृश नित्यप्रति सादर प्रयोग करें। इस कात्यायनी-स्मृति के अनुसार सामवेदियों के सदृश

अपर वेदियों को भी यह करणीय हैं। अधिकन्तु पौराणिक कार्य में सर्ववेदियों का ही समान अधिकार है।

'नरसिंह पुराण' में कहा गया है—"अर्घ्यं दद्यात्तु सूर्याय त्रिकालेषु यथाक्रमम्। अशक्त एककाले तु मध्याह्ने तु विशेषतः। सन्ध्यां कृत्वा तु दत्वार्घ्यं ततः पश्येद् दिवाकरम्॥"

'विष्णु-पुराण' में कहते हैं—"आचम्य च ततो दद्यात् सूर्याय सलिलांजलिम्। नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने॥" 'पद्मपुराण' में भी कहा है - "सम्पूज्य प्रणमेत् सूर्यं समाहितमनास्ततः॥"

आचमन—सूर्य-प्रणाम के अनन्तर एक बार आचमन करना चाहिये, क्योंकि कर्म के अन्त में भी आचमन करने का नियम रहा है—"कर्म्मणोऽन्ते आचमनं चेति सामान्यम्॥" (गृह्यपरिशिष्टे)।

जप के अतिरिक्त अन्यत्र गायत्री—जप के समय ही गायत्री के आदि और अन्त में प्रणव लगाना चाहिये। परन्तु प्राणायाम, मार्जन, और सूर्यजलांजलि दान देने के समय गायत्री के अन्त में प्रणव कहने की विधि नहीं है।

अशौच में गायत्री-जप—सन्तान होने के सूतक में या किसी के मरने का सूतक हो, तो उसमें पूरी सन्ध्या न करके, मंत्र के उच्चारण के बिना प्राणायाम करे, मार्जन-मन्त्रों का मन-ही-मन उच्चारण करते हुए मार्जन करे, गायत्री को भली भांति उच्चारण कर सूर्यनारायण को अर्घ्य दे और मार्जन करे या न करे, परन्तु उपस्थान तो नहीं ही करना चाहिये।—"सूतके

मृतके कुर्यात् प्राणायाम-ममंत्रकम्। तथा मार्जनमंत्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत्॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्। मार्जनन्तु न वा कुर्यादुपस्थानं न चैव हि॥" (भरद्वाजः)। "गायत्री-तन्त्र" में जननाशौच और मरणाशौच में सिर्फ गायत्री जपने को कहा है—"ब्रह्मविद्या च अत्याज्या गायत्री मृतसूतके।" 'आश्वलायन' ने भी अशौच में दस बार गायत्री जपने का आदेश किया है—"आपन्न-आशुचौ काले तिष्ठन्नपि जपेद् दश।" 'पुलस्त्य' जी कहते हैं—"संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत्। न त्यजेत् सूतके वापि त्यजन्गाच्छेदधोगतिम्॥" अर्थात् सन्ध्या, जप, तथा होम को यावज्जीवन करे, सूतक में भी इन कर्म को न छोड़े, यदि छोड़े तो अधोगति को प्राप्त होता है। 'पैठीनिसि' ने भी कहा है—"सूतके मृतके वापि सन्ध्याकर्म समाचरेत्। मनसोच्चारयेन् मंत्रान् प्राणायामादृते द्विजः।" अर्थात् ब्राह्मण को चाहिये कि वह जनन अथवा मरण के अशौच में भी सन्ध्या करे, मन से ही मंत्र जपे, प्राणायाम न करे।

उपनयन के दिन से आरम्भ करके जीवन पर्यंत संध्या नित्य करनी चाहिये। यद्यपि वेदपाठादि में अनध्याय होते हैं तथापि सन्ध्या करने में अनध्याय नहीं होता क्योंकि यह नित्यकर्म है और शास्त्रों में भी लिखा है—"नैत्यके नास्त्यनध्यायः" नित्यकर्म में अनध्याय नहीं है। "अहरहः संध्यामुपासीत" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण) संध्या को प्रतिदिन करना चाहिये। अतएव जनन अथवा मरण के अशौच में भी संध्या नहीं छूटती है।

आपत्काल में सन्ध्या-विधि—पवित्र स्थान तथा आचमनीय जलादि का अभाव होने पर भी मन-ही-मन सन्ध्या करनी चाहिये—"मनसा चैवं सम्यगाचार-मनुपालयेदापत्कल्पे।" (गौतमः)। सन्ध्या प्रभृति नित्यकर्म अवश्य कर्त्तव्य होने के कारण जैसे-तैसे करके भी करना चाहिये, परन्तु उन्हें कभी छोड़े नहीं—"यथा कथंचिन्नित्यानि शक्यवस्तुनिरूपितः। येन केनापि कार्याणि, नैव नित्यानि लोपयेत्॥" (बौधायनः)। आपत्काल के लिये 'श्रुति' में भी कहा गया है—"यथा शक्नुयात्, तथा कुर्य्यात्" अर्थात् जैसे हो सकेगा, वैसे ही करोगे। जल के अभाव में धूलि से अर्घ्य करना चाहिये। जल के अभाव में या बहुत लंबी यात्रा के समय अथवा कैद में पड़ जाने पर या अशौच अवस्था में दोनों कालों की सन्ध्या के समय धूलि से अर्घ्य देना बतलाया गया है—"जलाभावे महामार्गे वन्धने त्वशुचावपि। उभयोः संध्ययोः काले रजसा वार्घ्यमुच्यते॥" (आह्निक सूत्रावली)।

मानसिक सन्ध्या आरम्भ से अर्घ्य के पहलेतक ही की जाती है, इसमें कुश और जल का उपयोग नहीं होता—"अर्घ्यान्ता मानसी सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता॥" (निर्णयसिन्धु)।

जो लोग अग्निहोत्री नहीं हैं, उन्हें दोपहर की सन्ध्या मध्याह्न में करने का समय न मिलने पर प्रातःसन्ध्या के बाद ही मध्याह्नसन्ध्या करनी चाहिये—"अनग्निराचरेत् कृत्यं मध्याह्नात् प्राग् विशेषतः॥" (वशिष्ठः)।

सायंसन्ध्या का निषेध— 'तिथितत्व' में संक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी और श्राद्ध के दिन में वैदिक-सायं-

सन्ध्या का निषेध किया गया है। इन तिथियों में सायं-सन्ध्या करने से पितृहत्या का पाप होता है—"संक्रान्त्यां, पक्षयोरन्ते, द्वादश्यां, श्राद्धवासरे। सायं-सन्ध्या न कुर्वीत, कृते च पितृहा भवेत्॥"

अस्तु

ॐ तत्सत्

यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः

उपनीत यजुर्वेदी ब्राह्मण तथा उपनीत क्षत्रिय और वैश्य के लिये

(प्रारम्भः)

[सन्ध्योपासन के सम्बन्ध में बहुत-सी महत्वपूर्ण बातों को जानने के लिये पुस्तक के आरम्भ में दी हुई 'सन्ध्या-तत्व' और 'अवश्य जानने योग्य बातें' पढ़ लेनी चाहिये ।]

ॐ तत्सत्

यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः

(उपनीत यजुर्वेदी ब्राह्मण तथा उपनीत क्षत्रिय और वैश्य के लिये)

स्नान करके दो बार आचमन और विष्णुस्मरण कर सूखी शुद्ध वस्त्र त्रिकच्छ कर के पहन कर उत्तरीय ओढ़ और अंगौछा लिये हुये आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके बैठ दो बार आचमन कर के विष्णु स्मरण करे। "स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद् वाससी परिधाय च" (आह्निककारिकासु)।

आचमन के बाद विष्णु-स्मरण करने का मंत्र—"ॐ तद् विष्णोः परम पद ७ं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥" ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः। ॐ पुण्डरीकाक्षः॥ (साम उत्तरार्चिक ८।२।५।४, ऋ १।२।७, शु० यजुः माध्यन्दिन ६।५)।

अर्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ तत्त्व, जो आकाश में सूर्यमण्डल के समान सर्वत्र प्रकाशमान और वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है, ज्ञानी लोग सर्वदा देखते हैं।

विष्णु-स्मरण के अनन्तर, भस्म से तिलक लगावे। प्रातः जलमिश्रित, मध्याह्न चन्दनमिश्रित और सायं-काल में सूखी भस्म लगावे। भस्म-तिलक लगाने की विधि और मंत्र यह हैं—बायें हाथ पर भस्म लेकर [प्रातः] उसमें किंचित जल मिला करके

दाहिने-अंगूठे से भस्म को निम्न मंत्रों से मले।—"ॐ अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योमिति भस्म। सर्व छं हवा इद छं भस्म। मन एतानि चक्षुछंषि भस्मानीति॥" फिर नीचे लिखा हुआ मंत्र पढ़ता हुआ भस्म की ओर देखे—"ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव वन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥" और फिर नीचे लिखे हुये मंत्रों से भस्म लगावे—त्र्यायुषमिति मन्त्रस्य नारायण ऋषिरुष्णिक् छन्द आशीर्वेदता भस्मधारणे विनियोगः।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् (कह कर ललाट में)।

ॐ जमदग्नेस् त्र्यायुषम् (कह कर गले में)।

ॐ यद्देवानां त्र्यायुषम् (कह कर दाहिने और बांयें कंधे में)।

ॐ तन्मे अस्तु त्र्यायुषम् (कह कर हृदय में) लगावे॥ (यजु० ३। ६२) पारस्करः—त्र्यायुषानि कुर्व्ते भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणांसे हृदि त्र्यायुषमितिप्रतिमंत्रमिति। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, जमदग्ने स्त्र्यायुषम, यद्देवानां त्र्यायुषम्, तन्मे अस्तु त्र्यायुषम्। (ब्राह्मणसर्वस्वे) वंदनां कारयेत्तेन शिरः कंठान्सकेषु च। कश्यपस्येति मंत्रेण यथानुक्रमयोगतः॥ (वशिष्ठः) स्नात्वा मत्रै द्विराचम्य परिदध्याच्च वाससी। प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ द्विराचम्य कुशासने। उपविश्य प्रागुदग्वा तिलकं भस्मधारणम्। (आह्निकपंचाशिका) फिर रुद्राक्ष-माला और कुशपवित्र (अभाव में दोनों हाथों की अनामिका मूल-में सोने या ताम्बे की, और दाहिने हाथ की तर्जनी में चादी की अंगूठी) धारण करके, जल-शुद्धि, आसन-शुद्धि और शिखा-बन्धन करके, ईशान कोण की ओर मुंह कर दो बार आचमन और विष्णु स्मरण करके मार्जन अर्थात् मंत्र-स्नान करे।

मार्जन-स्नान--कुशाओं के अग्रभागों से या जल को नख-स्पर्श से बचा कर, दाहिने हाथ की मध्यमांगुलि के द्वारा जल लेकर, नीचे लिखे एक-एक मंत्र से, सिर में, एक-एक बार जल का प्रोक्षण करे यानी सिर पर जल छिड़के ।—

ॐ शन्न आपो धन्वन्याः, शमु नः सन्त्व-नूप्याः । शन्नः समुद्रिया आपः, शमु नः सन्तु कूप्याः ॥१॥ (अथर्व०,१।१।६।४ तथा १६।१।२।२)। ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः, स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रे-णेवाज्य,-मापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२॥ (शु० यजुः २०।२०)॥ ॐ आपो हिष्ठा मयोभुव,-स्तान ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥३॥ (सामवेद उत्तरार्चिक ६।२।१०, ऋग्वेद ७।६।५। शु० यजुः ११।५०)।

अर्थ---मरूदेश का जल हमारे मंगलजनक हों, जलमय देश का जल हमारे शुभकारी हों, समुद्र का जल हमें कल्याण-कारी हों और कूप का जल हमारे कल्याण-जनक हों। (यहां जल का अर्थ है—जलाभिमानी देवता) ॥१॥ घर्मार्त्त मनुष्य जिस तरह वृक्ष की जड़ में जाकर छाया में बैठ घाम से मुक्त होता है, स्नान करने से जिस प्रकार मनुष्य शारीरिकमल से मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार घी, संस्कार-विधि से पवित्र होता है, उसी प्रकार (यह) जल मुझे पाप से मुक्त करें ॥२॥ हे जल ! क्योंकि आप सुख देनेवाले हो, इस कारण हमें उत्तम भोज्य के, भोजन के तथा महत् और रमणीय ब्रह्म-साक्षात्कार के अधिकारी करो ॥३॥

ॐ यो वः शिवतमो रस-स्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः

॥४॥ (वहां ही) ॥ ॐ तस्मा अरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥५॥ (वहां ही)॥ ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्, तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्य-जायत, ततः समुद्रो अर्णवः॥ ॐ समुद्रा-दर्णवा-दधि, संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्, विश्वस्य मिषतो वशी॥ ॐ सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता, यथा पूर्व-मकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष-मथो सुवः ॥६॥ (ऋग्वेद, ८। ८। ४८)॥

[यहां 'सुवः' न पढ़ कर 'स्वः' पढ़ने से तीन अक्षर कम हो जाने के कारण 'अनुष्टुप्' छन्दः न होगा। इस कारण "इयादि-पूरणः" सूत्र के अनुसार 'स्वः' के स्थान पर 'सुवः' पढ़े। फिर, तीन मंत्र मिल कर, यह अघमर्षण-मंत्र हुआ है, जैसे कि 'सर्वानु-क्रमणिका' में कहा गया है—"ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षणः" इत्यादि; इसीलिये 'समुद्रात्' तथा 'सूर्याचन्द्रमसौ' के आदि में भी प्रणव का उच्चारण करे।]

अर्थ—हे जल! पुत्र का हित चाहनेवाली माता जैसे अपने स्तन का दूध (रस) पिला कर लड़के का कल्याण करती है, वैसे ही तुम भी इस लोक में हमें अपने कल्याण-रूप रस-भोग में अधिकारी करो ॥४॥ हे जल! आप अपने जिस जगत के आधारभूत रस से सर्वत्र सब को तृप्त करते हो, तुम्हारे उस रस से हम भी सदा तृप्त होवें, और हे जल! आप हमें उस अमृत-रस के भोग करने में समर्थ करो ॥५॥ (महाप्रलय के समय केवल) ऋत् और सत्य-स्वरूप परब्रह्म ही रहे, और सब अन्ध-कारमय था। इसके बाद, अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में सर्वतो-

भाव से फल देने में उन्मुख, अदृष्ट यानी दैव के बल से (अर्थात् पूर्वकल्प के जीवों के प्राक्तन-कर्म के कारण) जलमय समुद्र उत्पन्न हुआ और उस जलमय समुद्र से प्रकाशमान जगत को रचने में समर्थ धाता यानी ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये। उन्होंने पहली सृष्टि के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को रचा, उनसे दिन और रात होने लगी। (दिन-रात होने से) संवत्सर की उत्पत्ति हुई। तिसके बाद ब्रह्माजी ने पृथिवी, आकाश, स्वर्ग और महरादि लोकों की सृष्टि की ॥६॥

संध्या-प्रायश्चित — किसी कारण से सन्ध्या का मुख्य समय बीत जाने पर १०८ बार या १० बार गायत्री-जपरू प्रायश्चित यहां ही करना चाहिये।

संकल्प—केवल प्रातःसन्ध्या के ही आरम्भ में हाथ जोड़ कर पढ़ना चाहिये। निम्नलिखित संकल्प पढ़े—

ॐ नत्वा तु पुण्डरीकाक्ष-मुपात्ताघ-प्रशान्तये।
ब्रह्म-वर्चस-कामार्थं प्रातःसन्ध्या-मुपास्महे ॥७॥ (मदन-पारिजाते संवर्त्तः)।

अर्थ—उपस्थित यानी वर्त्तमान पाप की शान्ति के लिये श्री नारायण जी को प्रणाम करके, ब्रह्मतेज लाभ के लिये हम प्रातः-सन्ध्या की उपासना करते हैं ॥७॥

(आचमन)

इसके बाद हाथ में जल ले निम्नाङ्कित विनियोग पढ़े—ऋतं चेति ऋक्त्रयस्य अघमर्षण ऋषि-र्भाववृत्ति-र्देवता अनुष्टुप् छन्दः अश्वमेधावभृते विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक ही बार आचमन करे—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्, तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ ॐ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्, विश्वस्य मिषतो वशी॥॥ ॐ सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता, यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष-मथो सुवः॥ (ऋग्वेद अ० ८ अ०८ व० ४८) [* अथवा 'भाववृत्ति देवता'।]

'आचान्तः पुनराचामेदतमित्यभिमन्त्र्य च। आस्तरं शुध्यति ह्येवमन्नपानमलीकृतम्॥" (योगियाज्ञवल्क्यः)

(आत्मरक्षा)

अपनी रक्षा के लिये अपने चारों ओर अग्नि-प्राचीर की भावना करके, दाहिने हाथ में जल लेकर बाँयें हाथ से ढक कर, ओङ्कारसहित गायत्री पढ़ कर उस जल को दक्षिणावर्त्त से अपने चारों ओर छिड़के।

['छन्दोग परिशिष्ट' में कहा गया है—"रक्षान्ते वारिणात्मानं परिवेष्ट्य समन्ततः······त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥"—अन्ते (आचमनान्ते) वारिणा आत्मानं समन्ततः (समन्तात्) परिवेष्ट्य रक्षा कार्या इति शेषः।]

(प्रायाणाम)

फिर प्राणायाम के लिये ऋषि, देवता आदि को स्मरण करे।—

ॐ कारस्य ब्रह्म ऋषि-रग्निर्देवता, गायत्रीच्छन्दः, सर्वकर्मारम्भे विनियोगः। सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिऋषि-रग्नि-वायु-सूर्य-वरुण-बृहस-

पतीन्द्र-विश्वदेवा देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्-बृहती-पङ्क्ति-त्रिष्टुब्-जगत्य-श्छन्दांसि, प्राणायामे विनियोगः। गायत्र्या विश्वामित्र ('विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः' (योगियाज्ञवल्क्यः) इस वचन के अनुसार यहाँ विश्वामित्र शब्द का अर्थ है ब्रह्मा।) ऋषिः, सविता देवताः, गायत्री च्छन्दः, प्राणायामे विनियोगः। गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषि, ब्रह्मवाय्वग्निसूर्या देवताः, प्राणायामे विनियोगः।

[ब्रह्मा + ऋषि; = ब्रह्म ऋषिः या ब्रह्मर्षिः। संवर्त्त, याज्ञवल्क्य और शङ्ख जी ने 'गायत्री शिरः' का छन्द नहीं लिखा है। शङ्ख जी ने साफ कहा है—"तस्य प्रजापतिर्ऋषि-र्यजुष्ट्वाच्छन्दसा विना। ब्रह्माग्नि-वायु-सूर्याश्च देवताः समुदाहृताः। प्राणस्यायमने चैव विनियोग उदाहृतः॥" 'आश्वलायन-गृह्यपरिशिष्ट' में इसका 'यजुश्छन्दः' लिखा गया है, परन्तु २१ वैदिक छन्दों में 'यजुः' नाम से कोई छन्द नहीं है।]

इस प्रकार प्राणायाम के ऋषि, देवता आदि का स्मरण कर के, आँखे मूंद, मौन हो कर, आगे लिखे मंत्र के सगुण-निर्गुणात्मक अर्थरूप रक्तवर्ण, चतुर्म्मुख, द्विभुज, जपमाला और कमण्डलु-धारी, हंस की पीठ के ऊपर बैठे हुये ब्रह्मा जी को अपनी नाभि-कमल में ध्यान करता हुआ, दाहिने हाथ के अंगूठे से नाक के दाहिने छिद्र को दाब कर, बांये छिद्र से धीरे-धीरे श्वास खींचता हुआ मन-ही-मन नीचे लिखे मंत्र को एक बार पढ़े।—(इसको 'पूरक-प्राणायाम' कहते हैं।)

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ सुवः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यं॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, ❀ भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ॥८॥

(तैत्तिरीय आरण्यक, १०।२७)॥ (यह मंत्र कृष्ण यजुः के हैं। इसमें सर्वत्र ही 'स्वः' को 'सुवः' पढ़ना होता है।) * 'वरेण्यं' का सर्वत्र 'वरेणियम्' कहे।

अर्थ—जो परमब्रह्म, जन्म-मृत्यु-दुःखादि के विनाश के लिये उपासनीय है तथा जो हमारी बुद्धि को धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के विषयों में प्रेरणा करते हैं, सूर्य-मण्डल-मध्यवर्त्ती तेज के प्राण-स्वरूप, सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कारिणी शक्ति की अभिन्न आधारस्वरूप उसी परमब्रह्म का हम ध्यान करते हैं। वे भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य इन सातों लोकों को व्याप्त कर के अपनी ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं; वे ही जगत के कारणभूत जल-स्वरूप हैं; वे ही मणि-पाषाणादि स्थावरों में ज्योतिःस्वरूप तथा तृणवृक्ष ओषधि-प्रभृति के अन्दर रसरूप हैं; वे ही मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटादि जंगमों के हृदय में चेतनात्मारूप से विराज रहे हैं; वे ही त्रिगुणातीत परब्रह्म हैं; तथा वे ही पृथिवी आकाश और स्वर्ग ये तीनों लोकस्वरूप हैं ॥८॥

पूरक के उपरान्त उस छिद्र को दबाये हुये, अनामिका और कनिष्ठा से नासिका के बायें छिद्र को भी दबाकर, श्वास को अपने हृदय में रोक, उसी मंत्र के सगुण-निर्गुणात्मक अर्थरुप नील कमल के समान कान्तिवाले चतुर्भुज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी गरुड़ की पीठ पर बैठे हुये श्री विष्णु जी का ध्यान करता हुआ उसी मंत्र को पढ़े। इसको 'कुम्भक-प्राणायाम' कहते हैं।

बाद में उसी मंत्र के सगुण-निर्गुणात्मक अर्थरूप, श्वेतवर्ण, पंचमुख, प्रतिमुंह में तीन नेत्र, दस बाहु, वृष की पीठ पर बैठे

हुये, रुद्र जी को अपने मस्तक में ध्यान करता हुआ, उसी मंत्र को पढ़ते-पढ़ते बायीं नाक को दबाये हुये, दाहिनी नाक से अंगूठे को उठाकर उसी छिद्र से श्वास को धीरे-धीरे छोड़े। इसको 'रेचक-प्राणायाम' कहते हैं। इन तीनों से एक प्राणायाम होता है।

(आचमन)

गोकर्णाकृति, दाहिने हाथ में सामान्य जल लेकर नीचे लिखे मंत्र को ऋष्यादि-स्मरण के साथ पढ़ कर आचमन करे, अर्थात् एक बार मंत्र पढ़ कर तीन बार जलपान करे और फिर ओंठादि को पोंछे और स्पर्श करे। "तच्च सकृत् मंत्रेण ब्राह्मतीर्थेन भक्षयित्वा द्विस्तूष्णीं भक्षयेत्।" (रघुनन्दनो वराहेणो)

(प्रातःसन्ध्या में आचमन का मंत्र)

सूर्य्यश्च मेति मंत्रस्य ब्रह्म ऋषि-रापो देवताः, प्रकृतिश्छन्दः, आचमने विनियोगः॥

ॐ सूर्य्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च। मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्रिया पाप-मकारिषं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या-मुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु यत् किंच दुरितं मयि। इदमहं मा-ममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ (तै० आरण्यक, १०।२५)॥

अर्थ—सूर्य्यश्च मा इत्यादि मंत्र के ऋषि ब्रह्मा, देवता जल, छन्दः प्रकृति और आचमन में इसका विनियोग होता है। सूर्य नारायण, यज्ञाभिमानी देवता, और यज्ञ के पति ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, इन्द्रादि देवता, मेरे से यज्ञों के पूर्ण न होने के कारण, जो

पाप हुये हैं, उन पापों से मेरी रक्षा करें, अर्थात् यज्ञों का अपराध मुझसे और न होवे। मैं ने रात में अज्ञान के कारण मन, वाक्य, दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर और लिंग के द्वारा यानी मैंने रात में अज्ञान से पराये द्रोह की चिन्ता से, स्वप्न में दूसरे को दुःखदायी वचन कहने से यानी परनिंदा कर या झूठ बोलकर, चींटी आदि को हाथ पैर से कुचल जाने से, न खाने योग्य अन्न आदि के खाने से और अयोग्य समय में स्त्री के साथ रमण करने से, जो पाप किया हो, उन पापों को रात्रि-काल के अधिष्ठात्री देवता नाश करें। मुझ में जो कुछ पाप हों, उन्हें तथा उन पापों के करनेवाले मुझे (यानी मेरे लिङ्ग शरीर को) मैं अमृत के (यानी परमात्मा के) अनुभव करने योग्य स्थान हृदय-कमल में स्थित प्रकाशरुप सूर्य में (अर्थात् स्वप्रकाश-परब्रह्म में) होम करता हूं; वे पाप उसी में सम्पूर्णतया भस्म हो जांय अर्थात् वे पाप बिलकुल नष्ट हो जांय और फिर मुझ से वे पाप कभी न होवें॥

(मध्याह्न-सन्ध्या में आचमन का मंत्र)

आपः पुनन्त्विति मंत्रस्य विष्णुर्ऋषि-रापो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, आचमने विनियोगः॥ ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं, पृथिवी पूता पूनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति-र्ब्रह्म पूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्ट-मभोज्यं, यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापो, ऽसतां च प्रतिग्रह ँ स्वाहा॥ (तैः आरण्यक, १०।२३)॥

अर्थ--- आपः पुनन्तु इत्यादि मंत्र के ऋषि विष्णु, देवता जल, छन्दः अनुष्टुप् और आचमन के लिये इसका प्रयोग होता

है। जल (यानी जलाभिमानी देवता) पृथिवी को पवित्र करें, पृथिवी भी स्वयं पवित्र होकर मुझे पवित्र करे। और जल (जल-देवता) वेद के अध्यापक (रक्षक) आचार्य जी को पवित्र करे, फिर वे वेद स्वयं पवित्र होकर मुझे पवित्र करें यानी उस आचार्य का वेदोपदेश मुझे पवित्र करे। उच्छिष्ट जो न खाने योग्य है, यदि मेरे से खाया गया हो, और भी जो असदाचरण मुझ से बन गया हो, तथा असत् पुरुषों से दान लेने से जो कुछ पाप हुआ हो, उन पापों को नष्ट करके, जल मुझे पवित्र करे, वे पाप पूर्णतया भस्म हो जांय॥

[सायंसन्ध्या में आचमन का मंत्र]

अग्निश्च मेसि मंत्रस्य रुद्र ऋषि-रापो देवताः, प्रकृतिश्छन्दः, आचमने विनियोगः॥ ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च। मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्वा पाप-मकारिषं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। अहस्तदवलुम्पतु, यत् किञ्च दुरितं मयि। इदमहं मा-ममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ (तै० आरण्यक, १०।२४)

अर्थ— अग्नि, क्रोधाभिमानी देवता, और क्रोध के पति इन्द्रियां, क्रोध से किये गये पापों से मेरी रक्षा करें, यानी और मुझे ऐसा क्रोध न होवे जिससे मैं कुछ पाप कर बैठूं। मैंने दिन में (अज्ञान से) मन, वाक्य, दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर और लिंग के द्वारा अर्थात् पराये द्रोह की चिन्ता से, दूसरे की निन्दा आदि करने से, किसी को हाथ से मारने से, पैर से चींटी आदि के कुचल जाने से, या गौ ब्राह्मण आदि पूज्य का अनादर करने

से, न खानेयोग्य अन्नादि खाने से, तथा स्त्रीका अशास्त्रीय संग करने से, जो पाप किया हो, उन पापों को, दिन के अधिष्ठात्री देवता नाश करें और जो कुछ मेरे में पाप हों उसे, और पाप करनेवाले मुझे (अर्थात् मेरे लिंग शरीर को) मैं, अमृत के, (यानी परमात्मा के) अनुभव करनेयोग्य स्थान हृदयकमल में स्थित प्रकाशरूप सत्य परमात्मा में (यानी परब्रह्म में) होम करता हूं; वे पाप उसी में पूर्णतया भस्म हो जांय अर्थात् वे पाप बिलकुल नष्ट हो जांय, जिससे फिर मुझसे वे पाप न होवें ॥

(मार्जन)

नीचे लिखे एक-एक मंत्र से एक-एक बार सिर पर जल छिड़के ।—

ॐ (१ वार) भूर्भुवः स्वः (१ वार) तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् (१ वार)।

आपो हि ष्ठेत्यादि त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषि-रापो देवता, गायत्री च्छन्दो, मार्जने विनियोगः॥ ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुव,-स्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे (१ वार)॥ ॐ यो वः शिवतमो रस,-स्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः (१ वार)॥ ॐ तस्मा अरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः (१ वार)॥ (यजुः ११।५०, ५१, ५२)॥

(अघमर्षण)

गोकर्णाकृति, दाहिने हाथ में जल लेकर, नाक जल से स्पर्श किये, एक बार ऋष्यादि स्मरण कर के तीन बार 'द्रुपदा' मंत्र और एक बार ऋष्यादि स्मरण करके तीन बार 'अघमर्षण' मंत्र

पढ़ के, यह भावना करे कि, यह जल बाईं नाक के छिद्र से अन्दर जाकर, अन्तःकरण को साफ करके, सारा पाप लेकर, नासिका के दाहिने छिद्र से निकल आया है; तब पापरूप उस जल को न देखते हुये, अपनी बाईं ओर पृथिवी पर जोर से पटक दें—"ततो मार्जनान्तरं जलचुलुकं नासिकाग्रे निधाय द्रुपदामंत्रम्, अघमर्षणमत्र च प्रत्येकं त्रिरावर्त्य, तज्जलं पूरकोच्छ्वासेन अभ्यन्तर प्रवेश्य, देहस्थसकलपापमादाय रेचकोच्छ्वासेन वहिर्निर्गत-मिति विचिन्त्य, भूमावास्फाल्य त्यजेत्।" (ब्राह्मणसर्वस्वे) "दक्ष-नासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्। तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्॥" (शौनकः) "दक्षिणेन नासाविलेन शनैः प्राणं रेचयन्" (आश्वलायनः)॥ यह अघमर्षणसूक्त अश्वमेध यज्ञ के समान सब पापों को दूर करनेवाला है—"यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः। तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम्॥" (लघुव्यासस्मृति)॥

मन्त्र-द्वयं

द्रुपदादिवेति मंत्रस्य कोकिलो राजपुत्र ऋषि-रापो देवता * अनुष्टुप् छन्दः सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः॥ ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः, स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्य,-मापः शुन्धन्तु मैनसः॥ [*माध्यन्दिन शाखी कहें—'प्रजापति ऋषि-रापो देवताः'।]

["ॐ द्रुपदादिव" से "मैनसः" तक और भी दो बार पढ़ कर फिर]—

अघमर्षण-सूक्तस्य अघमर्षण ऋषि-र्भाववृत्तिर्देवता, अनुष्टुप् छन्दः अश्वमेधावभृथे विनियोगः॥ ॐ ऋतञ्च सत्यंचाभीद्धात्, तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रो अर्णवः॥ ॐ समुद्रादर्णवा-दधि, संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य

मितो वशी ॥ ॐ सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता, यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष-मथो सुवः ॥—[यहां तक पढ़ के, "ॐ ऋतञ्च" से "सुवः" तक और भी दो वार पढ़े ।]

(आचमन)

गोकर्णाकृति दाहिने हाथ में जल लेकर नीचे लिखे मंत्र का पढ़ कर ब्राह्म-तीर्थ से आचमन करे।

अन्तश्चरसीति मंत्रस्य तिरश्चीन ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः आपो देवता आचमने विनियोगः । ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥ (शङ्ख संहिता, ६।१७, गरुड़ पुराण ५०।४२)।

[इस मंत्र का मूल तैत्तरीय आरण्यक प्र० १०। अ० २१ में इस प्रकार है 'ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं विष्णुस्त्वं वषट्कारस्त्वं रुद्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं प्रजापतिः ।]

अर्थ—हे जलरूप सूर्य्य ! आप सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में विचरते हैं, आप सर्वदर्शी हैं । आप ही यज्ञ, आहुतियों के मंत्र, आप ही जल, आप ही ज्योति, आप ही रस और अमृत भी हैं।

(सूर्य-जलांजलिदान)

अंजली भर जल ले कर प्रातः और मध्याह्नकाल में सूर्याभिमुख हो खड़े होकर और सायंकाल में बैठ कर ही ऋष्यादि स्मरण करके, गायत्री मंत्र पढ़ सूर्य को जल दे । प्रातः और सायं सन्ध्या में तीन बार पढ़ कर तीन अंजली और मध्याह्नसन्ध्या में एक बार पढ़ कर एक अंजली जल देवे । "एकं मध्याह्नकाले तु सायं प्रातस्त्रयस्त्रयः ॥" (विश्वामित्र कल्पे)।

खड़ा होने में विशेष विधि यों है—बायें पैर से खड़ा होकर दाहिने पैर की एँड़ी उठाये रखे या बायें पैर पर खड़ा रहकर दाहिने पैर बिल्कुल उठाये रखे अथवा दाहिने पैर बिल्कुल उठा कर बायें पैर के पंजे के बलपर खड़ा रहे अथवा दोनों पैर के ही पंजे पर खड़ा रहे—"तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एकपादो द्विपादपि। जपेत् कृतांजलिर्वापि ऊर्द्ध्वबाहु-रथापि वा ॥" (याज्ञवल्क्यः)।

(ऋष्यादि के सहित मंत्र)

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिरग्निर्देवता गायत्री छन्दो; भूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः, अग्नि-वायु-सूर्य्या देवताः, गायत्र्युष्णि-गनुष्टुभ-श्छन्दांसि; तत्सवितुरिति गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवता, गायत्रीच्छन्दः, अर्घ्यदाने विनियोगः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं *, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (सामवेद उत्तरार्चिक ६।३।१०।१, ऋग्वेद ३।४, १०, शुक्ल यजुः ३६।३। * वरेणियं पढ़े।

[इस अर्घ्य देने के पहले सन्ध्या का योग्य काल बीतने पर नीचे लिखे मंत्र से एक और अर्घ्य देवे।]—

आकृष्णेनेति मन्त्रस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः, सविता देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, अर्घ्यदाने विनियोगः ॥

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं चहिरण्येन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ (ऋग्वेद १।३।६ शु० यजु० ३४।३१)।

अर्थ—सूर्यनारायण शून्यमार्ग में पुनः पुनः घूम-घूम कर, देवता और मनुष्यों को अपने-अपने स्थानों में रख के, तथा

समस्त लोकों को उद्भासित करके, सोने के रथ पर बैठे आ रहे हैं ॥

['गृह्य-परिशिष्ट' में कहते हैं—"अथाचम्य दर्भपाणिः पूर्ण-मुदकांजलि-मुद्धृत्य आदित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिरर्घ्यं निवेद्य क्षिपेत् ।" अर्थात् अंजलि भर के जल देने को कहा गया है। 'वशिष्ठ' जी ने कहा है—कालातिक्रमणे चैव त्रिसन्ध्यमपि सर्वदा। चतुर्थार्घ्यं प्रकुर्वीत भानो-र्व्याहृतिपूर्वकम् ॥" अर्थात् सन्ध्या का योग्य-समय बीत जाने पर एक अर्घ्य अधिक देना चाहिये। "एकं मध्याह्नकाले च प्रायश्चित्तं द्वितीयकम् । अर्घ्यत्रयं प्रयोगार्थं प्रायश्चित्तं चतुर्थकम् ॥" (विश्वामित्र-कल्पे)] ॥

[सूर्य्योपस्थान]

बायें पैर से खड़ा होकर दाहिने पैर की एँड़ी उठाये हुए या बायें पैर पर खड़ा रहकर दाहिने पैर बिल्कुल उठाये हुए अथवा दाहिना पैर बिल्कुर उठाकर बायें पैर के पंजे के बलपर खड़ा हो या दोनों पैरों के पंजे पर खड़ा होकर प्रातः और सायं सन्ध्या के समय हाथ जोड़ कर और मध्याह्नसन्ध्या में ऊर्ध्व-बाहु होकर सूर्य्य की ओर ताकता हुआ सूर्य्य का उपस्थान अर्थात् स्तवन अर्थात् उपासना करे—"सायं प्रातरुपस्थानं कुयात् प्रांजलि-रानतः । ऊर्ध्ववाहुस्तु मध्याह्ने तथा सूर्यस्य दर्शनात् ॥" (हारीतः) "तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्द्धपादपि । कुर्यात् कृतांजलिर्वापि ह्यूर्ध्वबाहु-स्थापि वा ॥" (गोभिलः) ।

उपस्थान-मंत्राः

उदुत्यमिति मन्त्रस्य प्रस्कण्व ऋषिः, सूर्यो देवता, गायत्रीच्छन्दः

सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ उदु त्यं जातवेदसं, देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ (सामवेद छन्दआर्चिक, १।१।३।११, ऋग्वेद, १।४।७, शु० यजुः ७।४१) ॥१॥

चित्रमिति मंत्रस्य कुत्स ऋषिः, सूर्यो देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ चित्रं देवाना-मुदगा-दनीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावा-पृथिवी अन्तरिक्षथं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (सामवेद आरण्यार्चिक ५।३, ऋग्वेद १।८।७, यजुः ७।४२) ॥२॥

उद् वयमिति मंत्रस्य प्रस्कण्व ऋषिः, सूर्यो देवता, अनुष्टुप् छन्दः सौत्रामण्यवभृथे सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ उद्वयं तमसस्परि, स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्य्य-मगन्म ज्योति-रुत्तमम् ॥ (शु० यजुः, २०।२१) ॥३॥

तच्चक्षुरिति मंत्रस्य दध्यङ् आथर्वण ऋषिः, सूर्यो देवता, ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं, पुरस्ताच्छुक्र-मुच्चरत्, पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत थं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शत,-मदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥ (शु० यजुः, ३६।२४) ॥४॥

उदगादिति मंत्रस्य काण्वः प्रस्कण्व ऋषिः, सूर्य्यो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ उदगादयमादित्यो, विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्, मो अहं द्विषते रधम् ॥ (ऋग्वेद, १।४।७) ॥५॥

आकृष्णेनेति मन्त्रस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः, सविता देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्येन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (ऋक्, १।३।६; शु० यजु, ३४।३१) ॥५॥

स्वयम्भूरिति मंत्रस्य वामदेव ऋषिः (काण्व शाखीयों का 'सूर्य्य ऋषिः'), सूर्यो देवता, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ स्वयम्भूरसि, श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि, वर्चो मे देहि॥ (शु० यजुः, २।२६) ॥६॥

अर्थ—त्यं (तं) सूर्य्यं देवं केतवः (रश्मयः) उद् वहन्ति। किं भूतम्? जातवेदसम् (तेजोमयं)। किमर्थमुद्वहन्ति? विश्वाय (विश्वं) दृशे (द्रष्टुम्)। अयमर्थः—तेजोमयं सूर्यं विश्व-प्रकाशनाय रश्मयः उद्वहन्ति। उ इति पादपूरणे। विश्वाय इति द्वितीयार्थे चतुर्थी।—जगत के प्रकाश के लिये किरणें तेजस्वरूप सूर्य्य-देव को ऊपर की ओर धारण किये रखे हैं॥१।

मित्रदेव, वरुणदेव और अग्निदेव में अधिष्ठित सम्पूर्ण जगत के प्रकाशक, समस्त देवताओं के समष्टिस्वरूप, तथा स्थावर और जंगमरूप विश्व के अन्तर्य्यामी सूर्य्य नारायण, आश्चर्यरूप से उदय हुये। उदय होने के बाद स्वर्ग, मर्त्य और आकाश को अपनी किरणों से पूर्ण किये हैं॥२॥

अन्धकार से ढके हुये अर्थात् अप्रकाशरूप पृथिवीलोक से बाहर हो, इस से श्रेष्ठ स्वर्गलोक को, तथा देवलोक में स्थित सूर्यदेव को देखते हुये हम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त

हुये ।।३।।

(जिनकी हम स्तुति करते हैं) उन देवताओं के प्रिय पवित्रमूर्त्ति, संसार के नेत्ररूप (प्रकाशक) सूर्य्य नारायण, पूर्व दिशा में उदय हो रहे हैं। (इनकी कृपा से) हम सौ वर्ष तक अच्छी तरह देखते रहें यानी हमारी आंख अच्छी बनी रहे, सौ वर्ष तक पराये अधीन न होकर स्वतंत्ररूप से जीवित रहें, सौ वर्ष तक हम अच्छी तरह सुनते रहें यानी हमारे कान अच्छे बने रहें; सौ वर्ष तक अच्छी रीति से बोलते रहें यानी हमारी वाणी ठोक रहे; सौ वर्ष तक किसी के भी पास हमें दीन न होना पड़े। यह केवल सौ ही वर्ष तक नहीं, परन्तु सौ से भी अधिक वर्षों तक हम अच्छी तरह देखें, जीवित रहें, सुनें, कहें तथा स्वाधीन और अदीन रहें ।।४।।

ये सूर्य्यदेव मेरी व्याधि के विनाश के लिये सम्पूर्ण शक्ति के साथ उदय हुये हैं। मैं स्वयं अनिष्टकर व्याधि की हिंसा अर्थात् नाश न करूं—सूर्य्य-नारायण ही करें—।।५।।

(छटे मंत्र का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है) ।।६।।

हे सूर्यदेव, आप स्वयंसिद्ध हैं, सर्वोत्तम किरण अर्थात् सूर्यमण्डलाभिमानी हिरण्यगर्भ पुरुष भी आप ही हैं। क्योंकि आप तेज के देनेवाले हैं, इसलिये मुझे ब्रह्मतेज दीजिये ।।७।।

(अङ्ग न्यास)

तत्त्वमुद्रा (दाहिने हाथ के अंगुष्ठाग्र में अनाभिकाग्र का संयोग) के द्वारा यह न्यास करे।

ॐ हृदयाय नमः (हृदय-स्पर्श)।

भू शिरसे स्वाहा (शिर-स्पर्श) ।

भुं शिखायै वषट् (शिखा-स्पर्श) ।

वः कवचाय हुम् (पहले बांयें हाथ को दहिने कंधे के ऊपर और फिर दाहिने हाथ को बायें कंधे के ऊपर रख कर, बायें हाथ की तत्त्वमुद्रा से दाहिने कन्धे का स्पर्श, और दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा से बायें कन्धे का स्पर्श) ।

स्वः अस्त्राय फट् (दाहिना हाथ सिर के चारो ओर घुमा कर, दाहिने हाथ की तत्त्वमुद्रा से बायें हाथ पर आघात) ।

इसी प्रकार और भी दो आवृत्ति अङ्गन्यास की करे ॥

(गायत्री के ऋषि, देवता आदि का स्मरण)

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषि-रग्निर्देवता, गायत्रीच्छन्दो, गायत्रीजपे विनियोगः । महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः, अग्नि-वायु-सूर्य्या देवता, गायत्र्युष्णि-गनुष्टुभ-श्छन्दांसि, गायत्रीजपे विनियोगः । गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवता, गायत्रीच्छन्दो, गायत्रीजपे विनियोगः ॥

(गायत्री का ध्यान)

ॐ श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा । श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पै-रलं-कारैश्च भूषिता ॥ आदित्यमण्डलान्तःस्था ब्रह्मलोकस्थिताऽथवा । अक्षसूत्र-धरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥ (निर्वाणतंत्रे ३ पटले तथा याज्ञवल्क्यः, गरूड़पुराणे ३।२१७)

अर्थ—जो श्वेतवर्ण कही गई हैं, सफेद रेशम का वस्त्र पहने हुयीं हैं, सफेद पुष्प, चन्दन आदि अनुलेपन से युक्त तथा श्वेत आभूषणों से सुशोभित हैं, हाथ में रुद्राक्ष की माला लिये

पद्मासन से बैठी हुई हैं और जो सूर्य्यमण्डल में अथवा ब्रह्मलोक में स्थित हैं—(ऐसी देवी का मैं ध्यान करता हूं।) इस मंत्र के अर्थ के अनुसार गायत्री-माता का ध्यान करे।

(गायत्री का आवाहन)

कृतांजलि हो कर कहे—

तेजोसीति मंत्रस्य देवा ऋषयो, धाम देवता, गायत्र्या आवाहने विनियोगः।

ॐ तेजोऽसि, शुक्रमस्य-मृतमसि, धाम नामासि। प्रियं देवाना-मनाधृष्टं देवयजनमसि॥ (शु० यजुः, १।३१)

अर्थ—हे गायत्रि ! आप ब्रह्मतेज हो, सवितृरूप से आप तेजोमयी हो, आप मुक्ति देनेवाली हो. आप उपासना करने-वालों की ध्येय हो. आप सब के नमस्कार के योग्य हो, आप सर्वमन्त्रमयी होने से, देवताओं की प्रिय सर्वदा विजयी ईश्वर की उपासना का मंत्र हो। (पूजन की साधन हो)

(गायत्री का उपस्थान)

कृतांजलि हो कहे—

तुरीयपदस्य विमल ऋषिः परमात्मा देवता, गायत्र्युपस्थाने विनियोगः। ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य-पदसि। नहि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे॥ (वृहदार-ण्यकोपनिषद् ५।१४)

अर्थ—हे गायत्रि ! आप एक पदी (अर्थात् भू भुंवः स्वः ये तीन भुवन आप का प्रथम पद है), आप द्विपदी (अर्थात्

ऋक् यजुः साम से तीन वेद आप का दूसरा पद है), आप त्रिपदी (अर्थात् प्राण अपान व्यान ये तीन वायु आप का तीसरा पद है); आप चतुष्पदी हो (अर्थात् सूर्य्य आप का चौथा पद है)। आप अपद् अर्थात् अप्राप्य हो (क्योंकि आप अनायास प्राप्त होने योग्य नहीं हैं) आप के ध्यान से दर्शन के योग्य, और रजोगुण से परे वर्त्तमान अर्थात् शुद्ध सत्त्व-स्वरूप चतुर्थ पद को अर्थात् सूर्य्य को नमस्कार है।

[जपने में गायत्री-मंत्र का स्वरूप]

ॐ भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं * । भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ॥ (योगी याज्ञवल्क्यः, महर्षि पराशरः, भगवान् श्री शङ्कराचार्य्यः)। * वरेणियम् कहे

इस गायत्री महामंत्र का अर्थ चिन्तन करता हुआ कम-से कम दश बार जप करे, क्योंकि दश बार जपने को अवर—अधम निकृष्ट कहा गया है, इसलिये इस से कम जपने से कुछ भी फल की प्राप्ति नहीं होती। गायत्री का हजार बार जप उत्तम है, सौ बार जप मध्यम है और दश बार जप अधम है। नियमित रूप से प्रति दिन गायत्री जपने से विप्र पापों से लिपायमान नहीं होता—"सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। गायत्रीं तु जपन् विप्रो न पापै-र्विप्रलिप्यते ॥" (अत्रिः) "सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। सहस्रनेत्रां गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ॥" (गायत्री-हृदये) यहां 'सहस्र' शब्द से एक हजार आठ और 'शत' शब्द से एक सौ आठ जाने। 'गायत्रीकल्प' में कहा गया है—"अष्टोत्तरसहस्रां वा अष्टोत्तरशतं तु वा। अष्टाविंशतिमेवाथ

गायत्रीदशकं जपेत् ॥" 'वरेण्यं' को 'वरेणियम्' पढ़ने के लिये भी कहा गया है—"वरेण्यं विरलं चोक्त्वा जपकाले विशेषतः ॥" (गायत्रीकल्पे)

[आवर्त्तन-नमस्कार]

नीचे लिखा हुआ मंत्र पढ़ कर दक्षिणावर्त्त से घूम कर, जिस दिशा में सूर्यनारायण हों उस दिशा को प्रणाम करे।—

सूर्य्यस्येति मंत्रस्य वामदेव ऋषिः (काण्वशाखी कहें "सूर्य ऋषिः"), सूर्य्यो देवता, सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ सूर्य्यस्यावृत-मन्वावर्त्ते ॥ (शु० यजुः, २।२६)

अर्थ---सूर्यस्य सम्बन्धिनीम् आवृतम् (आवर्त्तनम्) अनु (अनुसृत्य) अहमपि आवर्त्ते (प्रादक्षिण्येन आवर्त्तनं करोमि)।— सूर्य्य जिस प्रकार पृथिवी की प्रदक्षिणा करते हैं, मैं भी वैसे ही सूर्य्य नारायण की प्रदक्षिणा करूं॥

(गायत्री-विसर्जन)

हाथ में जल लेकर नीचे लिखा मंत्र पढ़ कर जल छोड़े।—

उत्तरे शिखरे इति मंत्रस्य कश्यप ऋषिः, गायत्री देवता, अनुष्टुप छन्दः, गायत्रीविसर्जने विनियोगः।

ॐ उत्तरे शिखरे देवि, भूम्यां पर्वतवासिनी। ब्राह्मणैः समनुज्ञाता गच्छ देवि, यथासुखम् ॥ (याज्ञवल्क्यः)।

अर्थ—हे देवि! पृथिवी पर वर्त्तमान मेरुपर्वत के सबसे ऊंचे शिखर पर आप विराजती हैं। ब्राह्मण, आप की पूजा करके प्रसन्न हो, आपको अपने स्थान पर पधारने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं, आप सुख से अपने स्थान उस शिखर पर

पधारिये ॥

[कृष्ण यजुर्वेद में विसर्जनमंत्र का पाठ ऐसा है—"उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽनुज्ञाता गच्छ देवि यथा-सुखम् ॥" (तै० आरण्यक १०। ३०)।]

याज्ञवल्क्य जी ने एक स्थान पर कहा है—"प्रणवो भू र्भुवः स्वश्च अंगानि हृदयादयः। त्रिरावर्त्य ततः पश्चादार्षं छन्दश्च दैवतम्। विनियोग-स्तथा रूपं ध्यातव्यं क्रमतस्तु वै ॥" इससे यही ज्ञात होता है कि, अंगन्यास के बाद गायत्री के ऋषि, देवता आदि का स्मरण करके तब गायत्री का ध्यान करना चाहिये। 'शङ्ख' जी का भी यही मत है।

और एक स्थान में याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—"तामावाह्य जपित्वाथ नमस्कृत्य विसर्जयेत्।" इससे यही जाना जा रहा है कि, आवाहन के बाद गायत्री जप कर, सूर्य्यस्थिति-दिशा को नमस्कार करके, गायत्री का विसर्जन करे।

आवाहन के साथ-साथ तुरीय मंत्र से गायत्री का उपस्थान और नमस्कार करके जप करने की बात व्यास जी महाराज ने कही है—"तेजोऽसीति च मंत्रेण गायत्री-मावाहयेत् ततः। उपस्थाय तुरीयेण नमस्कृत्य जपेत् तु ताम् ॥" बौधायन जी ने भी कहा है—"उपतिष्ठेद् वा एतां देवीं तुरीयेण।"

इन मतों से यही क्रम मिल रहा है—अङ्ग-न्यास, गायत्री के ऋष्यादि-स्मरण, गायत्री-ध्यान, गायत्री-आवाहन, गायत्री का उपस्थान और नमस्कार, गायत्री-जप, सूर्यस्थिति-दिशा को नमस्कार और गायत्री-विसर्जन ॥

[सूर्य्यार्घ्य-दान]

नीचे लिखा मंत्र पढ़ कर सूर्यनारायण को अर्घ्य के अभाव से जल दे।

एषोऽर्घः—ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन्, भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये, सवित्रे कर्मदायिने॥ ॐ श्रीसूर्य्याय नमः॥ (कालिकापुराणे, ५.७१।७६)

अर्थ—हे परब्रह्मस्वरूप सवितृदेव, आप तेजस्वी, दीप्तिमान, विश्वव्यापि तेज के आधार, संसार के रचनेवाले, पवित्र, और प्राणियों को कर्मों में लगानेवाले हैं, आपको मेरा प्रणाम है। यह अर्घ्य मैं ने सूर्य्यनारायण को अर्पण किया॥

[सूर्य्य-प्रणाम]

नीचे लिखे मंत्र से हाथ जोड़ कर श्री सूर्य्यनारायण को प्रणाम करे।—

ॐ जवाकुसुम-संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। ध्वान्तारिं सर्व-पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥ (नवग्रहस्तोत्रे)।

अर्थ—जवा-कुसुम के सदृश लाल, महर्षि कश्यप जी के पुत्र, अत्यन्त दीप्तिमान्, अन्धकार का नाश करनेवाले, सम्पूर्ण पापों के नाशक, दिवाकर, सूर्यनारायण को मैं प्रणाम कर रहा हूं॥

[आचमन]

एक बार आचमन करके फिर विष्णुस्मरण करे। कहा गया है—"सन्ध्यातो विरमेद् विद्वान् प्रसन्नवदनाम्बुजः। ध्यायन् कृतार्थ-

आत्मान-माचम्य मौन-मुत्सृजेत् ॥"—"कर्मणोऽन्ते आचमनञ्चेति सामान्यम् ।"—(गृह्य-परिशिष्टे) ॥

[सन्ध्याङ्ग भूमृत्तिका धारण]

"ॐ भू र्भुवः स्वः ॥ स्वः । भुवः । भूः । ॐ ॥ ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः ।" कह कर प्रणाम करके, आसन के नीचे जल छोड़ कर, उस जल को, आसन के नीचे की मृत्तिका के सहित ललाट में लगावे ।—क्योंकि 'गायत्री-पटल' में कहा गया है—"अप्रोक्षित-जपस्थानाच्छक्रो हरति तज्जपम् । तन्मृदालक्ष्म कुर्वीत ललाटे तिलकाकृति ॥" अर्थात् जिस स्थान पर बैठ कर जप किया गया है उसके नीचे की मृत्तिका मस्तक में लगावे । ऐसा न करने से जप के फल को इन्द्र ले लेता है ॥

(भगवान् से प्रार्थना)

तत्पश्चात् कर्म में न्यूनताकी पूर्त्ति के लिये निम्नलिखित श्लोकद्वय पढ़ते हुये भगवान् से प्रार्थना करे ।—

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

[अर्थ 'सामवेदीय-संध्याप्रयोगः' में देखे ।]

फिर निम्नोक्त वाक्य पढ़कर यह सन्ध्योपासन-कर्म परमेश्वर को समर्पित करे ।

अनेन सन्ध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां, न

मम । ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

सन्ध्या के पश्चात्, बचे हुये जल को फेंक देवे क्योंकि कहा गया है कि पैर धोने से, पीने से, और सन्ध्या करने से बचा हुआ जल कुत्ते के मूत्र के समान (अपवित्र) हो जाता है, उसके पी लेने से चान्द्रायण-व्रत करने पर पवित्र होता है—"पादशेषं, पीत-शेषं, सन्ध्याशेषं तथैव च। शुनो-मूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥"

हरिः ॐ तत्सत्

—०—

ॐ तत्सत्

परिशिष्ट

योगी याज्ञवल्क्य, महर्षि शङ्ख और बौधायन तथा महामुनि व्यासदेव महाराज के सिद्धान्तानुसार अङ्न्यास से लेकर गायत्री-विसर्जन तक सन्ध्या का क्रम ७७ पृष्ठ में दिखलाया गया। उसमें गायत्रीशापविमोचन, गायत्रीहृदय, मुद्राप्रदर्शन और गायत्रीकवच का उल्लेख नहीं है। परन्तु किन्हीं-किन्हीं पद्धतिकारों ने इनके प्रयोग का आदेश किया है। इस कारण, और 'अधिकस्याधिकं फलम्' अर्थात् धर्म्माचरण का जितना अधिक अनुष्ठान किया जा सके, उतना ही अधिक कल्याण, करनेवाले का होता है, इसलिये भी, अङ्गन्यास के बाद 'गायत्री-शापविमोचन' और 'गायत्री-हृदय' का पाठ, गायत्री-उपस्थान के अनन्तर "सुमुखं, सम्पुटं" प्रभृति चौबीस मुद्रा और गायत्री-जप के बाद "सुरभिः" प्रभृति आठ मुद्राका प्रदर्शन और 'गायत्री-कवच' का पाठ करना उत्तम है। गायत्री-विसर्जन के बाद 'गायत्री-तर्पण' भी कहीं-कहीं कहा गया है॥

❀

गायत्री-शापविमोचन

(अङ्गन्यास के बाद पढ़े)

अस्य गायत्र्या ब्रह्मशाप-विमोचन-मंत्रस्य ब्रह्म ऋषि, गायत्रीच्छन्दो, ब्रह्म देवता, ब्रह्म-शाप-विमोचने विनियोगः ।

ॐ गायत्रि, त्वं यद् ब्रह्मेति ब्रह्मविदो विदुस्त्वाम् । पश्यन्ति धीराः सुमनसो वा । गायत्रि, त्व ब्रह्मशापाद् विमुक्ता भव ॥१॥

अस्य गायत्र्या वसिष्ठशाप-विमोचनमंत्रस्य वसिष्ठ ऋषि-रनुष्टुप् छन्दो, ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा देवता, वसिष्ठ-शाप-विमोचने विनियोगः ।

ॐ अर्कज्योति-रहं ब्रह्म, ब्रह्म-ज्योति-रहं शिवः । शिव-

अर्थ—गायत्रीकी ब्रह्मशाप-विमोचन मंत्रके ऋषि ब्रह्मा, छन्दः गायत्री, देवता ब्रह्म हैं, ब्रह्मशाप-मोचनके लिये इसका प्रयोग होता है ।

अर्थ—हे गायत्रि, जो ब्रह्म है, वही आप हैं; ब्रह्मज्ञानी लोग आपको वैसे ही जानते हैं । शुद्धचित्त पंडित लोग आपको वैसे ही देखते हैं । हे गायत्रि ! आप ब्रह्माजी के शापसे मुक्त हो जावो ॥१॥

अर्थ—गायत्रीकी वसिष्ठ-शाप-मोचन-मंत्रके ऋषि वसिष्ठ, छंदः अनुष्टुप् , देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, वसिष्ठ-शाप-मोचनके लिये इस मंत्र का प्रयोग होता है ।

मैं सूर्य की ज्योति ब्रह्मा जी हूँ, ब्रह्माजी की ज्योति

ज्योति-रहं विष्णु-र्विष्णुज्योति रहं शिवः ॥ गायत्रि, त्वं वसिष्ठ-शापाद् विमुक्ता भव ॥२॥

शिवजी हूं, शिवजी की ज्योति विष्णुजी हूं और विष्णु जी की ज्योति शिवजी हूं। हे गायत्रि! आप वसिष्ठजी के शापसे मुक्त हो जावो ॥२॥

अस्य गायत्र्या विश्वामित्र-शाप-विमोचनमंत्रस्य विश्वामित्र ऋषि-रनुष्टुप् छन्दो, गायत्री देवता, विश्वामित्र-शाप-विमोचने विनियोगः।

अर्थ—गायत्रीकी विश्वामित्र-शाप-मोचन मंत्रके ऋषि विश्वामित्र, छन्दः अनुष्टुप् देवता गायत्री, विश्वामित्र-शाप-मोचनके लिये इस मंत्र का प्रयोग होता है।

ॐ अहो देवि महादेवि विद्ये सन्ध्ये सरस्वति। अजरे अमरे चैव ब्रह्मयोनि नमोऽस्तु ते ॥ गायत्रि, त्वं विश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ॥३॥

हे देवि, हे तेजोमयि, हे तत्त्वज्ञानमयि, हे सन्ध्या-स्वरूपिणि, हे सरस्वति, हे जरारहिते, हे मरणवर्जिते, हे वेदमातः, आपको प्रणाम है। हे गायत्रि, आप विश्वा-मित्रजी के शापसे मुक्त हो जावो ॥३॥

॥ इति गायत्री-शाप-विमोचनम् ॥

गायत्री-हृदय

(शाप-विमोचन के बाद पढ़े)

ॐ नमस्कृत्य भगवान् याज्ञवल्क्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति। त्वं ब्रूहि ब्रह्मन्, गायत्र्युत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि। ब्रह्मज्ञानोत्पत्ति प्रकृतिं परिपृच्छामि ॥१॥

अर्थ—भगवान् याज्ञवल्क्य ने ब्रह्माजी से पूछा, हे ब्रह्मन् हमारी इच्छा गायत्रीकी उत्पत्ति सुननेकी है, आप कहिये। जिससे ब्रह्मज्ञान होता है, उसी प्रकृतिके बारेमें पूछता हूं ॥१॥

श्रीभगवानुवाच। प्रणवेन व्याहृतिभिः प्रवर्त्तते तमसस्तु परं ज्योतिः। कः पुरुषः? स्वयंभुर्विष्णुरिति। सोऽपः सृजति। अथ तास्वप्-स्वंगुल्या मन्थयते। मन्थ्यमानात् फेनो भवति। फेनाद् बुद्बुदो भवति। बुद्बुदादण्डं भवति। अण्डाद् वायुर्भवति। वायो-रग्निर्भवति। अग्नेरोङ्कारो भवति। ओङ्काराद् व्याहृतिर्भवति। व्याहृत्या गायत्री भवति। गायत्र्याः सावित्री भवति। सावित्र्याः सरस्वती भवति। सरस्वत्या वेदा भवन्ति। वेदेभ्यो

भगवान् ब्रह्माजी बोले—प्रणव और व्याहृतियोंके साथ तमोगुणसे परे परमज्योति सदा विद्यमान रही है। वह ज्योतिर्मय पुरुष कौन है? वे स्वयंसिद्ध विष्णुजी हैं। उन्होंने पहले जल रचा, फिर उसे अंगुलीसे मथा। मथने से फेन उत्पन्न हुआ। फेनसे बुलबुला हुआ। बुलबुलासे अण्ड हुआ। अण्डसे वायु। वायुसे अग्नि। अग्निसे ओङ्कारका प्रकाश हुआ। ओङ्कारसे व्याहृतियां हुईं। व्याहृतियोंसे गायत्री

ब्रह्मा भवति । ब्रह्मणो लोका भवन्ति । तस्माल्लोकाः प्रवर्त्तन्ते, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सोपनिषदः सेतिहासाः । सर्वे ते गायत्र्याः प्रवर्त्तन्ते । यथाग्निर्देवानां,ब्राह्मणो मनुष्याणां, मेरुः शिखरिणां, गंगा नदीनां, वसन्त ऋतूनां, ब्रह्मा प्रजापतीनां, एवमसौ मुख्या । गायत्र्या गायत्रीच्छन्दो भवति ।२।

किं वै भूः ? किं भुवः ? किं स्वः ? किं महः ? किं जनः ? किं तपः ? किं सत्यं ? किं तत् ? किं सवितुः ? किं वरेण्यं ? किं भर्गः ? किं देवस्य ? किं धीमहि ? किं धियः ? किं यः ? किं नः ? किं प्रचोदयात् ? ।३।

हुई । गायत्रीसे सावित्री, सावित्रीसे सरस्वती और सरस्वतीसे वेद हुआ । वेदसे ब्रह्माजी हुये । ब्रह्माजीसे चौदह भुवन पैदा हुये । तबसे चौदह भुवन वर्त्तमान रहे हैं । वेद चार हैं; उनके फिर अंग, उपनिषद् और इतिहास हैं । वे सब ही गायत्रीसे हुये । जैसे अग्नि देवताओंमें प्रधान है, ब्राह्मण मनुष्योंमें प्रधान है, सुमेरु पर्वतोंमें प्रधान है, गंगाजी नदियोंमें प्रधान है, वसन्त ऋतुओंमें प्रधान है, ब्रह्माजी प्रजापतिओं में प्रधान हैं वैसे ही गायत्री सबमें प्रधान है । गायत्री की छंद गायत्री है ।२।

भूः क्या है ? भुवः क्या है ? स्वः क्या है ? महः क्या है ? जनः क्या है ? तपः क्या है ? सत्यं क्या है ? तत् क्या है ? सवितुः क्या है ? वरेण्यं क्या है ? भर्गः क्या है ? देवस्य क्या है ? धीमहि क्या है ? धियः क्या है ? यः क्या है ? नः क्या है ? प्रचोदयात् क्या है ?

भूरिति भूर्लोको, भुव इत्यन्तरिक्ष-लोकः, स्वरिति स्वर्लोको, महरिति महर्लोको, जन इति जनलोक-स्तप इति तपोलोकः, सत्यमिति सत्यलोको, भूर्भुवः स्वरिति त्रैलोक्यम्। तदिति तेजः, यत्तेजः सोऽग्निः, सवितादित्यो ऽन्नं वै वरेण्यम्, अन्नमेव प्रजापतिः। भर्ग इति आपो वै भर्गः, यदापस्तत् सर्वदेवताः। देवस्य सवितुर्देवो वा यः पुरुषः स विष्णुः। धीमहीत्यैश्वर्यं, यदैश्वर्यं स प्राण इत्यध्यात्मम्। यदध्यात्मं तत् परमं पदं, तन्महेश्वरः। धिय इति महीति, पृथिवी

भूः भूलोक (पृथिवी), भुवः आकाश, स्वः स्वर्ग, महः महर्लोक, जन जनलोक तपः तपोलोक, सत्यं सत्यलोक, भूर्भुवः स्वः त्रिलोक। तत् शब्दसे तेज है। जो तेज है वही अग्नि है। सविता शब्दसे आदित्य (सूर्य), वरेण्य शब्दसे अन्न, वह अन्न ही प्रजापति (ब्रह्मा) है। भर्ग शब्दसे अप् (जल) है, अप् कहनेसे सम्पूर्ण देवता हैं। देव, सविता अर्थात् पुरुष हैं, पुरुष शब्दसे विष्णुजी हैं। धीमहि का अर्थ, ऐश्वर्यका ध्यान करें; ऐश्वर्य शब्दसे प्राण अर्थात् अध्यात्म है। वह अध्यात्म परम पद है और वह परम पद ही महेश्वर है। धियः शब्दसे मही, और मही शब्दका अर्थ पृथिवी है। यो नः प्रचोदयात् का अर्थ है, जो कामरूपसे हमें चलाते हैं; काम ही इन सम्पूर्ण लोकोंको चलाता है अर्थात् भांति-भांति

महो। यो नः प्रचोदयादिति कामः, काम इमान् लोकान् प्रच्यावयते। यो नृशंसो योऽनृशंसोऽस्याः स परो धर्म इत्येषा वै गायत्री ।४।

किं-गोत्रा ? कत्यक्षरा ? कतिपादा ? कतिकुक्षिः ? कतिशीर्षा ? ॥५॥

साङ्ख्यायनगोत्रा, चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री, त्रिपदा, षट् कुक्षिः, पंचशीर्षा ।६।

केऽस्यास्त्रयः पादा भवन्ति ? का अस्याः षट् कुक्षयः ? कानि च पंच शीर्षाणि ? ॥७॥

ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति, यजुर्वेदो द्वितियः, सामवेदस्तृतीयः । पूर्वा दिक् प्रथमा

के कामोंमें लगाता है। काम असत् कर्मोंका प्रवर्त्तक होने से नृशंस, एवं सत्कर्मका प्रवर्त्तक होनेसे अनृशंस (दयालु) होता है, वैसे चलाना ही इसी गायत्रीका असाधारण धर्म है—गायत्री ऐसी है ।४।

गायत्रीका गोत्र क्या है ? अक्षर कितने हैं ?, चरण कितने हैं ? कुक्षि कितनी हैं ? शिर कितने हैं ? ॥५॥

गायत्री का गोत्र सांख्यायन है, अक्षर चौबीस हैं, चरण तीन हैं, कुक्षि छः हैं, शिर पांच हैं ॥६॥

उनके तीन पाद कौन-कौन हैं ? छः कुक्षिः क्या-क्या हैं ? और पांच शिर कौन-कौन हैं ? ॥७॥

ऋग्वेद इसका प्रथम पाद है, यजुर्वेद दूसरा पाद और सामवेद तीसरा पाद है। पूर्व दिशा पहली कुक्षि, दक्षिण

कुक्षिर्भवति, दक्षिणा द्वितीया, पश्चिमा तृतीया, उत्तरा चतुर्थी, ऊर्ध्वा पंचमी, अधोऽस्याः षष्ठी। व्याकरणमस्याः प्रथमं शीर्षं भवति, शिक्षा द्वितीयं, कल्पस्तृतीयं, निरुक्तं चतुर्थं, ज्योतिषा-मयनमिति पंचमम् ।८।

दिशा दूसरी कुक्षि, पश्चिम दिशा तीसरी कुक्षि, उत्तर दिशा चौथी कुक्षि, ऊपर की दिशा पाँचवी कुक्षि और नीचे की दिशा छठी कुक्षि है। व्याकरण इनका पहला शिर, शिक्षा-शास्त्र दूसरा शिर, कल्पशास्त्र तीसरा शिर, निरुक्त शास्त्र चौथा शिर और ज्योतिष शास्त्र पांचवां शिर है ।८।

किं लक्षणम्? किं विचेष्टितं? किमुदाहृतम्? ।९।

गायत्री का लक्षण क्या है? चेष्टा क्या है? दृष्टान्त क्या है? ।९।

लक्षणं मीमांसाऽथर्ववेदो विचेष्टितं, छन्दोविचिति-रुदाहृतम् ।१०।

इनका लक्षण मीमांसा शास्त्र है, अथर्ववेद चेष्टा है, छन्दसमूह इन का दृष्टान्त है ।१०।

को वर्णः? कः स्वरः? ।११।

इनका वर्ण क्या है? स्वर क्या है? ।११।

श्वेतो वर्णः, षट् स्वराः। पूर्वा भवति गायत्री, मध्यमा भवति सावित्री, पश्चिमा सन्ध्या सर-

इनका वर्ण सफेद है। (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) ये छः स्वर हैं। वे प्रातःसन्ध्या में गायत्री, मध्याह्नसन्ध्या में सावित्री और

स्वती। रक्ता गायत्री,श्वेता सावित्री, कृष्णा सरस्वती ।१२।

प्रणवे नित्ययुक्ता स्याद् व्याहृतिषु च सप्तसु। सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते। शत-साहस्र-मभ्यस्ता गायत्री पावनं महत् ।१३।

उषःकाले रक्ता, मध्याह्ने श्वेता,-ऽपराह्ने कृष्णा। पूर्वसन्धि-र्ब्राह्मी, मध्यसन्धिर्मा हेश्वर्य-पर-संधिर्वैष्णवी। हंसवाहिनी ब्राह्मी, वृषभवाहिनी माहेश्वरी, गरुड़बाहिनी वैष्णवी ।१४।

पूर्वाह्नकाले सन्ध्या गायत्री कुमारी रक्तांगी रक्तवासा-स्त्रिनेत्रा पाशांकुशाक्षमाला- कमण्डलुकरा हंसारूढ़ा ऋग्वेदसहिता ब्रह्म-

सायंसन्ध्यामें सरस्वती होती हैं। गायत्री लाल, सावित्री सफेद और सरस्वती कृष्ण हैं ।१२।

वह सदा प्रणवसे और सात व्याहृतियोंसे युक्त रही है। समस्त पापोंका एक साथ समावेश होने पर, लक्ष जप करनेसे गायत्री पूर्णतया पवित्र कर देती है ।१३।

वह प्रातः रक्तवर्ण, मध्याह्न में श्वेतवर्ण, और सायंकालमें कृष्णवर्ण है। प्रातः ब्रह्माणी, मध्याह्नमें माहेश्वरी और सायं वैष्णवीरूपिणी है। ब्रह्माणी-रूपसे हंसपर बैठी हुई, माहे-श्वरीरूपसे बृषपर बैठी हुई और वैष्णवीरूपसे गरुड़पर बैठी हुई हैं ।१४।

प्रातःसन्ध्यामें गायत्री कुमारीरूपिणी, रक्तवर्णा, लाल धोती पहने हुये, तीन नेत्रवाली, पाश अंकुश रुद्राक्ष-माला और कमण्डलु हाथों में

देवत्या भूर्लोकव्यवस्थितादित्यपथ-गामिनी ।१५।

लिये हुये हंसपर बैठी हुई, ऋग्वेदके साथ, ब्रह्माजीके स्वरूपके समान, पृथिवीलोक में रहनेवाली, सूर्यमार्गसे चलनेवाली हैं ।१५।

मध्याह्नकाले सन्ध्या सावित्री युवती श्वेतांगी श्वेतवासा-स्त्रिनेत्रा पाशांकुशत्रिशूलडमरूहस्ता वृष-भारूढ़ा यजुर्वेदसहिता रूद्रदेवत्या भुवर्लोकव्यवस्थितादित्यपथगामिनी ।१६।

मध्याह्नसन्ध्यामें सावित्री जवान अवस्थावाली, सफेद साड़ी पहने हुये, सफेद रंगके वर्णवाली तीन नेत्रवाली, पाश अंकुश त्रिशूल और डमरू हाथमें लिये हुये, बैलके ऊपर सवार, यजुर्वेदके साथ, रुद्र जी के स्वरूपके समान आकाशलोकमें रहनेवाली, सूर्यके मार्गसे विचरनेवाली है ।१६।

सायाह्नकाले सन्ध्या सरस्वती वृद्धा कृष्णांगी कृष्णवासा-स्त्रिनेत्रा शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-हस्ता गरुड़ारूढ़ा सामवेदसहिता विष्णुदेवत्या स्वर्लोक-व्यवस्थिता-दित्यपथगामिनी ।१७।

सायंसन्ध्यामें सरस्वती, बूढ़ी अवस्थावाली, श्याम रंगवाली, पीली साड़ी पहने हुये, तीन नेत्रवाली, चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा-पद्म लिये हुये, गरुड़ पर बैठी हुई, सामवेद लिये हुये, विष्णुजीके स्वरूपके समान, स्वर्गमें रहनेवाली, सूर्यके मार्गसे विचरनेवाली हैं ।१७।

कान्यक्षरदैवतानि भवन्ति ? ।१८।

प्रथममाग्नेयं, द्वितीयं प्राजापत्यं, तृतीयं सौम्यं, चतुर्थमैशानं, पंचम-मादित्यं, षष्ठं बार्हस्पत्यं, सप्तमं भगदेवत्यम्, अष्टमं पितृदेवत्यं, नवम-मार्यमणं, दशमं सावित्रम्, एकादशं त्वाष्ट्रं, द्वादशं पौष्णं, त्रयोदश-मैन्द्राग्नं, चतुर्दशं वायव्यं, पंचदशं वामदेवं, षोड़शं मैत्रावरुणं, सप्तदशं वाभ्रव्यम्, अष्टादशं वैश्वदेव्यं, एकोनविंशतिकं वैष्णवं, विंशतिकम् वासवम्, एकविंशतिकम् तौषितं, द्वाविंशतिकं कौवेरं, त्रयोविंशतिक-माश्विनं, चतुर्विंशतिकं ब्राह्मम्—इत्यक्षर-दैवतानि भवन्ति ।१६।

द्यौर्मूर्ध्नि संगतास्ते, ललाटे रुद्रः, भ्रुवोर्मेघः, चक्षुषोश्चन्द्रादित्यौ, कर्णयोः शुक्रबृहस्पती,

अक्षरोंके देवता कौन-कौन है ।१८।

प्रथम अक्षरके देवता अग्नि, द्वितीयके प्रजापति, तृतीयके सोम, चतुर्थके ईशान, पंचमके आदित्य, षष्ठके बृहस्पति, सप्तमके भर्ग, अष्टमके पितर, नवमके अर्यमा, दशमके सविता, एकादशके तुष्टा, द्वादशके पूषा, त्रयोदशके इन्द्र और अग्नि, चतुर्दशके वायु, पन्द्रहवेंके वामदेव, सोलहवेंके मित्र और वरुण, सत्तरहवेंके बभ्रु, अठारहवेंके विश्वदेव, उन्नीसवेंके विष्णु, बीसवेंके वसु, इक्कीसवेंके तुषितगण, बाईसवेंके कुवेर, तेईसवेंके अश्विनीकुमार और चौबीसवेंके ब्रह्मा—ये चौबीस वर्णों के देवता हैं ।१६।

गायत्रीके मस्तकमें स्वर्ग, ललाटमें रुद्र, भौंहोंमें मेघ, आंखोंमें चन्द्र और सूर्य्य, कानोंमें शुक्र और बृहस्पति,

नासिके वायुदेवत्ये, दन्तौष्ठा-वुभयसन्ध्ये, मुखमग्नि,-र्जिह्वा सरस्वती, ग्रीवा साध्यानुगृहीतिः, स्तनयोर्वसवः, वाहोर्मरुतः, हृदयं पार्जन्य, - माकाश-सुदरं, नाभि-रन्तरिक्षं, कटिरिन्द्राग्नौ, जघनं प्राजापत्यं, कैलासमलया-वुरू, विश्वे देवा जानुनी, जह्नुकुशिकौ जङ्घाद्वयं, खुराः पितरः, पादौ वनस्पतयः। अंगुलयो रोमाणि, नखाश्च मुहूर्त्ता-स्तेऽपि ग्रहाः केतुर्मासा ऋतवः सन्ध्याकाल-स्तथाच्छादनं संवत्सरो, निमिष-महोरात्र-मादित्यश्चन्द्रमाः।२०।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां

दशावराम्। सहस्रनेत्रां गायत्रीं

शरणमहं प्रपद्ये।२१।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः,

नाकोंमें वायु, दांत और ओंठों में दोनों सन्ध्या; मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें साध्यगण, स्तनोंमें आठ वसु, बाहुओंमें ४९ वायु, हृदयमें इन्द्र, पेटमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, कमरमें इन्द्र और अग्नि, जंघावोंमें प्रजापति; कैलाश और मलय पर्वत इनके ऊरू, विश्वदेव जानु, जह्नु और कुशिक जांघ, पितर खुर, वनस्पति चरण; मुहूर्त्त, ग्रह, धूमकेतु, मास, ऋतु और सन्ध्या के समय इनकी अंगुलियां, रोम और नख; साल इनकी ढक्कन; दिन, रात, सूर्य और चन्द्र इनकी पलक।२०।

जिनका हजार बार जप उत्तम है, सौ बार जप मध्यम है और दश बार जप अधम है, और जो हजार नेत्रवाली हैं, मैं उस गायत्रीकी शरणको प्राप्त होता हूं॥२१॥

"ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं" मंत्र

ॐ तत् पूर्वजपाय नमः । ॐ तत्

प्रातरादित्यप्रतिष्ठाय नमः ।२२।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । तत् सायं-प्रातरधीयानः पापोऽपापो भवति ।२३।

य इदं गायत्री-हृदयं ब्राह्मणः पठेत् , अपेय-पानात् पूतो भवति, अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति, अज्ञानात् पूतो भवति, स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति, गुरु-तल्पगमनात् पूतो भवति, अपङ्क्ति-पावनात् पूतो भवति, ब्रह्महत्यायाः

को नमस्कार है, जपसे पहले कहने योग्य "ॐ तत्" को प्रणाम है। प्रातःकालके सूर्य में स्थित "ॐ तत्" को मेरा नमस्कार है ।२२।

सायंकाल पढ़नेसे गायत्री दिनमें किये हुये पापोंको नाशती है। प्रातःकाल पढ़ने से रात्रिमें किये हुये पापोंको नाशती है। अतः प्रातः और सायं दोनो कालमें पढ़नेसे पापी मनुष्य, पाप-रहित हो जाता है ।२३।

जो ब्राह्मण, इस गायत्री-हृदयको पढ़ता है वह अपेय-पानसे हुये पापसे मुक्त होता है, अभक्ष्यभक्षणसे हुये पाप से मुक्त होता है। अज्ञानसे मुक्त होता है, सोनेकी चोरी करनेसे जो पाप होता है उससे मुक्त होता है, गुरुपत्नी-गमनके पापसे मुक्त हो जाता है, जिनके साथ एक पङ्क्तिमें बैठकर भोजन

पूतो भवती, अब्रह्मचारी सब्रह्मचारी भवति। इत्यनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुः सम्यगिष्टो भवति, षष्टिर्गायत्र्याः शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्-ग्राहयेत्। अथ सिद्धिर्भवति ।२४।

इदं ब्राह्मणो नित्यमधीयीत, सर्वपापैः प्रमुच्यते सर्वपापैः प्रमुच्यत इति। ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इत्याह भगवान् याज्ञवल्क्यः ॥२५॥

करना मना है, उनके साथ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेके पापसे मुक्त हो जाता है; ब्राह्मणबध करनेके कारण जो पाप होता है उससे मुक्त हो जाता है; अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी हो जाता है।

इस गायत्री हृदयके पढ़ने से, विधिसे किये गये यज्ञों का फल होता है और साठ हजार गायत्री-जपका फल होता है। आठ ब्राह्मणोंको इसे अच्छी प्रकार सिखाना चाहिये, तब सिद्धिलाभ होगा ।२४।

जो ब्राह्मण प्रतिदिन इसे पढ़ेगा वह अवश्यमेव सब पापोंसे छूट जायगा और निश्चय ही ब्रह्मलोकमें मान के साथ वास करेगा यह भगवान् याज्ञवल्क्य ने कहा है ॥२५॥

॥ इति गातत्री-हृदयम् ॥

—०—

गायत्री जपके पूर्वकी चौवीस मुद्रा

(ये मुद्रा गायत्रीके उपस्थानके बाद करे)

सुमुखं, संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा । द्विमुखं त्रिमुखं चैव, चतुः-पंचमुखं तथा ॥ षण्मुखाऽधोमुखं चैव, व्यापकांजलिकं तथा । शकटं यमपाशं च, ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखम् ॥ प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो वराहकः । सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥ चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्यादौ प्रदर्शयेत् ॥

अर्थ—सन्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, तीन-मुख, चारमुख, पांचमुख, छः मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजलि, शकट, यम-पाश, ग्रथित, उन्मुख, प्रलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, बराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव—ये चौबीस मुद्रा हैं। ये चौबीस मुद्रा गायत्री जपके आदिमें दिखलायें।

[किसी जानकारी महाशयसे इन्हें सीख लेवे]

गायत्री जपके बादकी आठ मुद्रा

(ये मुद्रा गायत्री जपके अन्तमें करे)

सुरभिर्ज्ञानवैराग्ये योनिः शंखोऽथ पंकजम् । लिङ्गं निर्वाणमुद्रां च जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्

अर्थ—सुरभि, ज्ञान, वैराग्य, योनि, शंख, कमल, लिंग और निर्वाण—ये आठ मुद्रा गायत्री-जपके अन्तमें दिखलाना चाहिये।

[किसी जानकारी महाशयसे इन्हें सीख लेवे]

गायत्री-कवच

(गायत्री जपके बाद आठ मुद्रा दिखलाकर तब कवच पढ़े)

अस्य श्रीगायत्रीकवचस्य ब्रह्मविष्णु-महेश्वरा ऋषयः, ऋग्-यजुः-सामा-थर्वाणि च्छन्दांसि, परब्रह्मस्वरूपिणी श्रीगायत्री देवता, प्रणवो बीजं, भर्गः शक्तिः, धियः कीलकं, मम नित्यानन्दैश्वर्य-सौख्यद्वारा ब्रह्मैक्यभावना-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।१।

इस गायत्री-कवच के ब्रह्मा-विष्णु और महादेव ऋषि हैं; ऋक् यजुः साम और अथर्व छन्दः हैं; परब्रह्मरूपिणी गायत्री देवता है; ओंकार बीज है; भर्ग शक्ति, धियः कीलक, अपने नित्य आनन्द, ऐश्वर्य और सुख प्राप्तिके द्वारा पर-मात्माके साथ ऐक्य-भावना की सिद्धिके लिये इसका प्रयोग है ॥१॥

(ॐ) तत्-कारः पातु मूर्द्धानं, स-कारः पातु भालकम् । चक्षुषी मे वि-कारस्तु श्रोत्रे रक्षे-त्तूकारकः ॥२॥

'तत्' यह पद मेरे मस्तककी रक्षा करे, 'स' यह वर्ण कपाल की, 'वि' नेत्रोंकी, 'तु' कानों की रक्षा करे ॥२॥

नासापुटे वं-कारस्तु रे-कारश्च कपोलकौ । णि-कार ओष्ठदेशे तु अधरे यं प्रकल्पयेत् ॥३॥

'वं' नासिकाके छिद्रोंकी, 'रे' गालोंकी, 'णि' ओष्ठकी (ऊपर के ओष्ठ) और 'यं' मेरे नीचेके ओंठकी रक्षा करे ॥३॥

आस्यमध्ये भ-कारस्तु गों-

'भ' मुझे मुखमध्ये रक्षा

कारश्चिबुकं तथा ॥४॥

दे-कारः कण्ठदेशे तु व-कारः स्कन्धदेशतः। स्य-कारो दक्षिणं हस्तं धी-कारो वामहस्तकम् ॥५॥

म-कारो हृदयं रक्षेद् हि-कारो जठरं तथा। धि-कारो नाभिदेशे तु यो-कारस्तु कटिं मम ॥६॥

गुह्यं रक्षतु यो-कार ऊरू रक्षेन् नः-कारकः। प्र-कारो जानुनी रक्षेज् जङ्घे चो-कारकस्तथा ॥७॥

गुल्फौ रक्षेद् द-कारस्तु यात्-कारः पातु पादकौ। इत्येतत् कथितं गुह्यं बाधाशतनिवारणम्। जपारम्भे च हृदयं जपान्ते कवचं पठेत् ॥८॥

स्त्री-गो-ब्रह्म-वधो यस्य

करे, 'गों' मेरी दाढ़ीकी रक्षा करे ॥४॥

'दे' कण्ठदेशकी, 'व' कन्धोंकी रक्षा करे, 'स्य' मेरे दाहिने हाथकी, 'धी' बायें हाथकी रक्षा करे ॥५॥

'म' मेरे हृदयकी, 'हि' जठर (पेट), 'धि' नाभी, 'यो' कमरकी रक्षा करे ॥६॥

'यो' मेरी गुदा, 'नः' दोनों उरू, 'प्र' दोनों जानु, 'चो' दोनों जंघाओंकी रक्षा करे ॥७॥

'द' मेरे दोनों घुटनोंकी, 'यात्' मेरे दोनों पैरोंकी रक्षा करे। यह गोपनीय कवच मैंने कहा, इससे सैकड़ों बाधाओंका विनाश होता है। गायत्री-जप के आदिमें गायत्री-हृदय और अन्तमें गायत्री-कवच का पाठ करे ॥८॥

इसके पाठ करनेसे स्त्री-वध, गोवध और ब्राह्मणवध

पठित्वा क्षीणपातकः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोके महीयते ॥६॥	आदि पापोंका भी नाश होता है और इस लोकमें सर्व पापों से मुक्त हो कर देहान्तमें ब्रह्मलोकमें जाकर पूजित होता है ॥६॥

॥ इति गायत्री-कवचम् ॥

—०—

गायत्री-तर्पणम्

(गायत्री विसर्जनके बाद सूर्य्यार्घ्यसे पहले केवल प्रातः-संध्यामें करे) (श्रीदेवीभागवत)

गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवता, गायत्रीच्छन्दो, गायत्री-तर्पणे विनियोगः ॥

ॐ भूः ऋग्वेद-पुरुषम् तर्पयामि। ॐ भुवः यजुर्वेद-पुरुषं तर्पयामि। ॐ स्वः सामवेद-पुरुषं तर्पयामि। ॐ महः अथर्ववेद-पुरुषं तर्पयामि। ॐ जनः इतिहासपुराण-पुरुषं तर्पयामि। ॐ तपः सर्वागम-पुरुषं तर्पयामि। ॐ सत्यम् सत्यलोक-पुरुषं तर्पयामि। ॐ भूः भूर्लोक-पुरुषं तर्पयामि। ॐ भुवः भुवर्लोक-पुरुषं तर्पयामि। ॐ स्वः स्वर्लोक-पुरुपं तर्पयामि। ॐ भूः एकपदां गायत्रीं तर्पयामि। ॐ भुवः द्विपदां गायत्रीम् तर्पयामि। ॐ स्वः त्रिपदां गायत्रीम् तर्पयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः चतुष्पदां गायत्रीम् तर्पयामि। ॐ उषसीम् तर्पयामि। ॐ गायत्रीम् तर्पयामि। ॐ सावित्रीम् तर्पयामि। ॐ सरस्वतीम्

तर्पयामि। ॐ वेदमातरम् तर्पयामि। ॐ पृथिवीं तर्पयामि। ॐ अजाम् तर्पयामि। ॐ कौशिकीम् तर्पयामि। ॐ सांकृतीम् तर्पयामि। ॐ सर्वजिताम् तर्पयामि॥—कह कर आचमनीसे एक-एक वार जल छोड़े॥

॥ इति गायत्री-तर्पणम् ॥

। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

❁ श्रीसद्गुरवे नमः ❁

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

सामवेदीय–सन्ध्याप्रयोगः

अनिकेत-श्रीपूज्यचरण-परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-
ब्रह्मनिष्ठ-श्रीशङ्करतीर्थस्वामिपाद-
महाराजेन सम्पादितः

शाके १८७७, संवत् २०१२

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

सामवेदीयसन्ध्याप्रयोगः +

[उपनीत सामवेदी ब्राह्मणके लिए] ※

(आचमन)

स्नान करके दो बार आचमन और विष्णुस्मरण (१) कर सूखा शुद्ध वस्त्र त्रिकच्छ करके पहनकर उत्तरीय ओढ़ और अंगोछा लिये हुए आसनपर पूर्व या उत्तरकी ओर मुंह करके बैठ दो बार आचमन करके पश्चात् विष्णुस्मरण करे। "स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद्वाससी परिधाय च ॥"—(आह्निककारिका)।

(आचमनके बाद विष्णुस्मरण करनेका मन्त्र (२))

"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥" ॐविष्णुः, ॐ विष्णुः, ॐ विष्णुः। ॐ पुण्डरीकाक्षः ॥ (३)

+ इस सन्ध्याप्रयोगके मन्त्रोंका अर्थ 'यजुर्वेदि-सन्ध्याविधिः' से देख लेना चाहिये।

※ सन्ध्योपासनके सम्बन्धमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातोंको जाननेके लिये पुस्तकके आरम्भमें दी हुई 'सन्ध्यातत्त्व' तथा 'अवश्य जानने योग्य बातें' अवश्य पढ़ लेनी चाहिये।

(१) "होमे भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि। आचान्तः पुनराचामेदन्यत्रापि सकृत् सकृत्। द्विराचम्य ततः शुद्धः स्मृत्वा विष्णुं सनातनम् ॥"—(ब्रह्मपुराणे)।

(२) "गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै।" (स्मृतिः)।

(३) "यः 'स्मरेत्' पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः।"—'यः पुण्डरीकाक्षं स्मरेत्, सः (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् स इति ऊह्यम्)

(भस्म-तिलक आदि धारण)

विष्णु-स्मरणके अनन्तर भस्मसे तिलक लगावे। प्रातः जलमिश्रित, मध्याह्न चन्दनमिश्रित और सायं सूखी भस्म लगावे (४)। भस्म-तिलक लगानेकी विधि और मन्त्र यह है—"ॐ मा नस्तोके तनये, मा न आयुषि, मा नो गोषु, मा नो अश्वेषु, रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामितोऽवधीर्हविष्मन्तः नमसा विधेम ते॥" (नारायणोपनिषत् २।५.२)—यह मन्त्र पढ़कर ["मानस्तोकेन मन्त्रितं भस्म धारयेत्" (बृहज्जाबालोपनिषत् ५।१)] बायें हाथपर भस्म लेकर [प्रातः] उसमें किंचित जल मिलाकर दाहिने अंगूठेसे भस्मको निम्न मन्त्रोंसे मले।—

ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमिति भस्म, सर्वं ँ ह वा इद ँ भस्म। मन एतानि चक्षु ँ षि भस्मानीति॥

फिर ऋष्यादि-स्मरणके साथ नीचे लिखा मन्त्र पढ़ता हुआ भस्मकी ओर देखे।—

त्र्यम्बकमन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिरनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको देवता चातुर्मास्य-त्र्यम्बकेष्ट्या-मग्निपरिक्रमणे विनियोगः।

"ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥"

सबाह्याभ्यन्तरः (बाह्येन शरीरादिना, आभ्यन्तरेण मन-आदिना च सहितः) शुचिः स्यात्। बाह्ये अपवित्रः अशुचिस्पर्शादिना, आभ्यन्तरे अपवित्रः क्रोधादिना।'—(श्राद्धतत्त्व-टीका तथा हरिभक्तिविलास-टीका)।

(४) "मध्याह्नात् प्रागजलैर्युक्तं तारं तदनुवर्जयेत्।" (बृहज्जाबालोपनिषत्, ४।६)

और फिर ऋष्यादि स्मरणके साथ नीचे लिखे हुये मन्त्रोंसे भस्म लगावे ।—

त्र्यायुषमिति मन्त्रस्य नारायण ऋषिरुष्णिक् छन्द आशीर्देवता भस्मधारणे विनियोगः ।

"ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् (कहकर ललाटमें)। ॐ जमदग्नेस् त्र्यायुषम् (कहकर गलेमें)। ॐ यद्देवानां त्र्यायुषम् (कहकर दाहिने और बायें कंधेमें) ॐ तन्मे अस्तु त्र्यायुषम" (कहकर हृदयमें) लगावे ॥ (यजु० सं० ३।६२)

अथवा—"ललाटे हृदये नाभौ गले च मणिबन्धयोः । बाहुमध्ये बाहुमूले पृष्ठे चैव च शीर्षके ॥ ललाटे ॐ ब्रह्मणे नमः । हृदये ॐ प्रभञ्जनाय नमः । नाभौ ॐ स्कन्दाय नमः । गले ॐ विष्णवे नमः । मध्ये ॐ प्रभञ्जनाय नमः । मणिबन्धे ॐ वसुभ्यो नमः । पृष्ठे ॐ हरये नमः । ककुदि ॐ शंभवे नमः । शिरसि ॐ परमात्मने नमः । इत्यादिस्थानेषु त्रिपुण्ड्रं धारयेत् ॥ त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं प्रभुम् । स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तत्त्रिपुण्ड्रकम् ॥" (बृहज्जाबालोपनिषत् ४।२८, २९) अर्थात् 'ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ प्रभञ्जनाय नमः' इत्यादि भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे ललाट, हृदय आदि भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भस्म लगावे अथवा 'ॐ नमः शिवाय' इस महामन्त्रसे ही समस्त स्थानोंमें भस्म त्रिपुण्ड्रक धारण करे ।

[पारस्करः—"त्र्यायुषाणि कुरुते भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणांसे हृदि त्र्यायुषमिति प्रतिमंत्रमिति । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, जमदग्नेस् त्र्यायुषम् यद्देवानां त्र्यायुषम्, तन्मे अस्तु त्र्यायुषम् ।" (ब्राह्मणसर्वस्वे) "वंदनां कारयेत्तेन शिरःकंठांसकेषु च । कश्यतस्येति

मंत्रेण यथानुक्रमयोगतः ॥" (वशिष्ठः) 'स्नात्वा मंत्रै र्द्विराचम्य परिदध्याच्च वाससी। प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ द्विराचम्य कुशासने। उपविश्य प्रागुदग्वा तिलकं भस्मधारणम् ॥' (आह्निकपञ्चाशिका)]

अर्थ—कश्यप मुनि और जमदग्नि ऋषिकी जो बाल्य, यौवन और वार्द्धक्यरूप तीनों अवस्थाओंकी आयुका समूह है तथा इन्द्र आदि देवताओंकी जो बाल्य, कुमार और यौवनरूप तीनों अवस्थाओंकी आयुका समाहार है, वह हमें प्राप्त हो।

फिर रुद्राक्ष-माला और कुशपवित्र (अभावमें दोनों हाथों की अनामिकामूलमें सोने या ताम्बेकी, और दाहिने हाथकी तर्जनीमें चांदी की अंगूठी) धारण करके, जल शुद्धि, आसनशुद्धि और शिखाबन्धन करके, ईशान कोणकी ओर मुंह कर ["सन्ध्यामुपासते यद्यद् यथावत्तन्निबोधत। ऐशान्याभिमुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः ॥" (योगियाज्ञवल्क्यः)] दो बार आचमन और विष्णु-स्मरण करके मार्जन अर्थात् मंत्र-स्नान करे।

(मार्जन-स्नान)

कुशाओंके अग्रभागोंसे या जलको नख-स्पर्शसे बचाकर, दाहिने हाथकी मध्यमाङ्गुलिके द्वारा जल लेकर, नीचे लिखे एक एक मंत्रसे, सिरमें, एक-एक बार जलका प्रोक्षण करे यानी सिर पर जल छिड़के।—

ॐ शन्न आपो धन्वन्याः, शमु नः सन्त्व-नूप्याः। शन्नः समुद्रिया आपः, शमु नः सन्तु कूप्याः ॥१॥ (अथर्व० १।२।६।४ तथा १६।१ २।२)॥ ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः, स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्य- मापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२॥ (शु० यजुः २०।२०)॥

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुव-स्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥३॥ (सामवेद उत्तरार्चिक ६।२।१०, ऋग्वेद ७।६।५, शु० यजुः ११।५०)॥ ॐ यो वः शिवतमो रस-स्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥४॥ (वहां ही)॥ ॐ तस्मा अरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥५॥ (वहां ही)॥ ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्, तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रो अर्णवः॥ ॐ समुद्रादर्णवादधि, संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्, विश्वस्य मिषतो वशी॥ ॐ सूर्याचन्द्रमसौ धाता, यथापूर्व-मकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष-मथो सुवः ॥६॥ (ऋग्वेद, ८।८।४८)॥ [अर्थ 'यजुर्वेदि-संध्याविधिः' में देखे।]

(सन्ध्या-प्रायश्चित्त)

किसी कारणसे सन्ध्याका मुख्य समय बीत जाने पर १०८ बार अथवा १० बार गायत्री-जपरूप प्रायश्चित्त यहाँ ही करना चाहिये।

(आत्मरक्षा)

अपनी रक्षाके लिये अपने चारों ओर अग्नि-प्राचीरकी भावना करके, दाहिने हाथमें जल लेकर बायें हाथसे ढककर, ओङ्कारसहित गायत्री पढ़कर उस जलको दक्षिणावर्त्तसे अपने चारों ओर छिड़के। ('छन्दोगपरिशिष्ट' में कहा गया है— "रक्षान्ते वारिणात्मानं परिवेष्ट्य समन्ततः⋯⋯त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥"—अन्ते (आचमनान्ते) वारिणा आत्मानं समन्ततः (समन्तात्) परि वेष्ट्य रक्षा कार्या इति शेषः।]

(प्राणायाम)

फिर प्राणायामके लिये ऋषि, छन्द आदिको स्मरण करे।—

ॐ कारस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री च्छन्दोऽग्निर्देवता, सर्वकर्मारम्भे विनियोगः। सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषि-र्गायत्र्युष्णि-गनुष्टुब्-बृहती-पङ्क्ति-त्रिष्टुब्-जगत्यश्छन्दांसि, अग्नि-वायु-सूर्य-वरुण-बृहस्पतीन्द्र-विश्वदेवा देवताः, प्राणायामे विनियोगः। गायत्र्या विश्वामित्र * ऋषि-र्गायत्री च्छन्दः, सविता देवता, प्राणायामे विनियोगः। गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्ब्रह्म-वाय्वग्नि-सूर्य्याश्चतस्रो देवताः, प्राणायामे विनि-योगः॥ [* 'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः' प्रजापतिः (योगियाज्ञ-वल्क्यः) इस वचनके अनुसार यहाँ विश्वामित्र शद्बका अर्थ ब्रह्मा है।]

इस प्रकार प्राणायामके ऋषि, छन्द आदि का स्मरण करके, आंखें मूंद, मौन होकर, आगे लिखे मंत्रके सगुण-निर्गुणात्मक अर्थरूप रक्तवर्ण, चतुर्मुख, द्विभुज, जपमाला और कमण्डलु-धारी हंसकी पीठके ऊपर बैठे हुये ब्रह्माजीको अपनी नाभि-कमलमें ध्यान करता हुआ, दाहिने हाथके अंगूठसे नाकके दाहिने छिद्र को दाबकर, बायें छिद्रसे धीरे-धीरे श्वास खींचता हुआ मन-ही-मन नीचे लिखे मंत्रको एक बार पढ़े।—(इसको 'पूरक-प्राणायाम' कहते हैं।)

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ सुवः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यं॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं * भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्॥ (तैत्तिरीय आरण्यक, १०।२७)। (यह मंत्र कृष्णयजुः के हैं। इसमें सर्वत्र ही 'स्वः' को 'सुवः' पढ़ना होता है।) * 'वरेण्यम्' को सर्वत्र 'वरेणियम्' कहे।

पूरकके उपरान्त उस छिद्रको दबाये हुये, अनामिका और कनिष्ठासे नासिकाके बायें छिद्रको भी दबाकर, श्वासको अपने हृदयमें रोक, उसी मंत्रके सगुण-निर्गुणात्मक अर्थरूप नीलकमल के समान कान्तिवाले, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी, गरुड़ की पीठपर बैठे हुये श्रीविष्णुजीका ध्यान करता हुआ उसी मंत्रको एक बार पढ़े। (इसको 'कुम्भक-प्राणायाम' कहते हैं।)

बादमें उसी मंत्रके सगुण-निर्गुणात्मक श्वेतवर्ण, पंचमुख, प्रतिमुंहमें तीन नेत्र, दशबाहु, वृषकी पीठपर बैठे हुये, रुद्रजीको अपने मस्तकमें ध्यान करता हुआ, उसी मंत्रको पढ़ते-पढ़ते बायीं नाकको दबाये हुये, दाहिनी नाकसे अंगूठेको उठाकर उसी छिद्र से श्वासको धीरे-धीरे छोड़े। (इसको 'रेचक-प्राणायाम' कहते हैं।) इन तीनोंसे एक प्राणायाम होता है।

(आचमन)

गोकर्णाकृति दाहिने हाथमें सामान्य जल लेकर नीचे लिखे मंत्रको ऋष्यादि-स्मरणके साथ पढ़कर आचमन करे अर्थात् एक बार मंत्र पढ़कर तीन बार जलपान करे और फिर ओंठादि को पोंछे और स्पर्श करे। ["कर्मावृत्तौ मंत्रावृत्तिः" एक कर्म अनेक बार करनेपर उसका मंत्र भी प्रत्येक बार पढ़नेका नियम है; परन्तु यहां तीन बार जलपान करनेसे एकबार आचमन होता है, इसलिये कर्म एकबार ही किया जानेके कारण मंत्र भी एक बार ही पढ़ना होता है। इसीलिये स्मार्त्त रघुनन्दनने वराहंणमें कहा—"यशोऽसीति मंत्रमुच्चार्य आचमनीयं जलमाचामेत्। तच्च सकृन्मंत्रेण ब्राह्मतीर्थेन भक्षयित्वा द्विस्तूष्णीं भक्षयेत्।"]

(प्रातःसन्ध्यामें आचमनका मंत्र)

सूर्य्यश्च मेति मंत्रस्य ब्रह्मऋषिः, प्रकृतिश्छन्द, आपो देवता, आचमने विनियोगः ॥ ॐ सूर्य्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च। मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्रिया पाप-मकारिषं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या-मुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु, यत् किंच दुरितं मयि। इदमहं मा-ममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ (तैत्तिरीय आरण्यक, १०।२५)॥ [रात्रिया इति "इयाडियाजि"-त्यादिना टास्थाने डियाच्। अकारिषमित्यत्र व्यत्ययेन इडा-गमः। शिश्ना इति तृतीयैकवचनस्य "सुपां सुलुक्" इत्यादिना डा आदेशः। पिङ्गलसूत्रकी वृत्तिमें 'स्वाहा' छोड़कर प्रकृति-छन्दका उदाहरणमें इसी मंत्रको ही रखा गया है। तै० आरण्यकमें मंत्रके अन्तमें 'स्वाहा' है। स्वाहा रखनेपर स्वराट् प्रकृति छन्द होता है।]

(मध्याह्नसन्ध्यामें आचमनका मंत्र)

आपः पुनन्त्विति मंत्रस्य विष्णुर्ऋषि,-रनुष्टुप् छन्दः, आपो देवता आचमने विनियोगः ॥ ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति,-र्ब्रह्म पूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्ट-मभोज्यं, यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ँ स्वाहा ॥ (तै० आरण्यक, १०।२३)॥ [ब्रह्मणस्पतिरिति "सुपां सुलुक्" इत्यादिना द्वितीयायाः स्युः। ब्रह्म पूता इत्यत्र तेनैव डा आदेशः। प्रतिग्रहमिति व्यत्ययेन नपुंसकता।]

[सायंसन्ध्यामें आचमनका मंत्र]

अग्निश्च मेति मंत्रस्य रुद्र ऋषिः, प्रकृतिश्छन्द, आपो देवता, आचमने विनियोगः ॥ ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च।

मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यदह्ना पाप-मकारिषं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या-मुदरेण शिश्ना । अहस्तदवलम्पतु, यत् किञ्च दुरितं मयि । इदमहं मा-ममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ (तै० आरण्यक, १०।२४) ॥ ["यदह्नात् कुरुते पापं तदह्नात् प्रतिमुच्यते । यद्रात्रियात् कुरुते पापं तद्रात्रियात् प्रतिमुच्यते" इति श्रुतेः, रात्रिकृतं पापं (रात्रिरेव अवलम्पतु खण्डयतु), दिवसकृतं पापं (दिवस एव अवलम्पतु) ।]

[पुनर्मार्ज्जन]

नीचे लिखे एक-एक मंत्रसे एक एक बार सिरपर जल छिड़के ।—

ॐ (१ बार), भूर्भुवः स्वः (१ बार), तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् (१ बार) ।

आपो-हि-ष्ठेति ऋक्त्रयस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्रीच्छन्द, आपो देवता, मार्जने विनियोगः ॥ ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुव,-स्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ॐ यो वः शिवतमो रस,-स्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ ॐ तस्मा अरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः (१ बार) ॥

[अघमर्षण]

गोकर्णाकृति दाहिने हाथमें जल लेकर, नाक जलसे स्पर्श किये, ऋष्यादि स्मरण करके 'अघमर्षण' मंत्र पढ़कर, यह भावना करे कि, यह जल बाईं नाकके छिद्रसे अन्दर जाकर, अन्तःकरण को साफ करके, सारा पाप लेकर, नासिकाके दाहिने छिद्रसे निकल आया है; तब पापरूप उस जलको न देखते हुये, अपनी

बाईं ओर भूमिपर जोरसे पटक देवे। समर्थ होनेपर इस प्रकार तीन बार करे, परन्तु तब प्रत्येक बार मंत्र भी पढ़ना चाहिये। [अघमर्पण = अघ + मर्पण। अघ = पाप, मर्षण = क्षालन। "करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च। जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥" (छन्दोगपरिशिष्ट) "जलपूर्णं तथा हस्तं नासिकाग्रे समर्पयेत्। ऋतञ्चेति पठित्वा तु तज्जलन्तु क्षितौ क्षिपेत्।" (संवर्त्तः) "ततो मार्जनानन्तरं···जलचुलुकं नासिकाग्रे निधाय, तज्जलं पूरकोच्छ्वासेन अभ्यन्तरं प्रवेश्य, देहस्थसकलपापमादाय रेचकोच्छ्वासेन वहिर्निर्गतमिति विचिन्त्य भूमावास्फाल्य त्यजेत्।" (ब्राह्मणसर्वस्वे)।

* अघमर्षण-मन्त्र विनियोगके साथ

ऋतमित्यस्य ऋक्त्रयस्य अघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तिर्देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः। ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रो अर्णवः॥ ॐ समुद्रादर्णवादधि, संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्, विश्वस्य मिषतो वशी॥ ॐ सूर्याचन्द्रमसौ धाता, यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ['स्वः' को 'सुवः' पढ़े।]

---

* अघमर्षण-सूक्त (अर्थात् ऋतं च इत्यादि मन्त्र) अश्वमेध-यज्ञके समान सब पापोंको दूर करनेवाला है—

["यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः। तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम्॥" (विष्णु, योगियाज्ञवल्क्य और लघुव्यास-स्मृति)]; इसीलिये महर्षि याज्ञवल्क्यने इस मन्त्रके विनियोग में 'अश्वमेधावभृथे' कहा है—"अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिः स्याद-

सूर्य-जलाञ्जलिदान

अंजली भर जल लेकर, सूर्याभिमुख हो खड़े होकर, ऋष्यादि स्मरण करके, गायत्री मंत्र पढ़ सूर्यको जल दे। प्रातः और सायं-सन्ध्यामें तीन वार पढ़कर तीन अंजली और मध्याह्न सन्ध्यामें एक बार पढ़कर एक अंजली जल देवे। "एकं मध्याह्नकाले तु सायंप्रातस्त्रयस्त्रयः।" (विश्वामित्रकल्पे)।

ऋष्यादिके सहित मंत्र

ॐ कारस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री च्छन्दोऽग्निर्देवता; भूर्भुवः स्वरिति तिसृणां महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापति ऋषि,-र्गायत्र्युष्णि-गनुष्टुभ-श्छन्दांसि, अग्नि-वायु सूर्य्या देवताः, तत्सवितुरिति गायत्र्या विश्वामित्र ऋषि-गायत्री च्छन्दः, सविता देवता, अर्घ्यदाने विनियोगः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं *, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ [* वरेणियं पढ़े] ॥

घमर्षणः। अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तन्तु दैवतम्। अश्वमेधावभृथे च विनियोगऽस्य कल्प्यते ॥"

इस प्रकार 'द्रुपदादिव' मन्त्र सौत्रामणि-यज्ञका अवभृथ-स्नानके समान फल देनेवाला है; इसीलिये महर्षि याज्ञवल्क्यने इस मन्त्रके विनियोगमें 'सौत्रामण्यवभृथे स्नाने' लिखा है—"कोकिलो राजपुत्रश्च द्रुपदाया ऋषिः स्मृतः। अनुष्टुप् च भवेच्छन्द आपश्चैवास्य दैवतम्। सौत्रामण्यवभृथे च विनियोजनम् ॥" सर्वानुक्रमणिकामें माध्यन्दिनशाखीके लिये इस मन्त्रका ऋषि 'प्रजापति' कहा गया है—"प्रजापतिरापो भूरिगनुष्टुप् ।"

['गृह्य-परिशिष्ट' में कहते हैं—"अथाचम्य दर्भपाणिः पूर्ण-मुदकांजलि-मुद्धृत्य आदित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिरर्घ्यं निवेद्य क्षिपेत् ।" अर्थात् अंजलि भरके जल देनेको कहा गया है।]

[सूर्य्योपस्थान]

सूर्यके सामने एक चरणकी एड़ी उठाये हुये अथवा एक पैरसे खड़ा होकर या एक पैरके आधे भागसे खड़ा हो प्रातः और सायं-संध्याके समय हाथ जोड़कर और मध्याह्नसंधामें उदूर्ध्ववाहु होकर सूर्य्यका उपस्थान अर्थात् उपासना करे—"सायं प्रातरुप-स्थानं कुर्यात् प्रांजलि-रानतः । उदूर्ध्ववाहुस्तु मध्याह्ने तथा सूर्यस्य दर्शनात् ॥" (हारीतः) "तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एकपादो द्विपादपि । जपेत् कृतांजलिर्वापि ऊर्ध्ववाहु-रथापि वा ॥" (याज्ञवल्क्यः)।

[उपस्थान-मंत्रौ]

उदुत्यमिति मंत्रस्य प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्री च्छन्दः, सूर्य्यो देवता सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ॥

ॐ उदु त्यं जातवेदसं, देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ (सामवेद छन्द आर्चिक १।१।३।११, ऋग्वेद १।४।७, शु० यजुः ७। ४१)॥

चित्रमिति मंत्रस्य कुत्स ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः, सूर्य्यो देवता, सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ॥

ॐ चित्रं देवाना-मुदगा-दनीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावा-पृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगत-स्वस्थुषश्च ॥ (सामवेद

आरण्यार्चिक ५।३, ऋग्वेद १।८।७, यजुः ७।४२ ॥ [अर्थ 'यजुर्वेदि-संध्याविधि' में देखे।]

(वंशोपस्थान)

ॐ नमो ब्रह्मणे, नमो ब्राह्मणेभ्यो, नम आचार्येभ्यो, नम ऋषिभ्यो, नमो देवेभ्यो, नमो वेदेभ्यो, नमो वायवे च, मृत्यवे च, विष्णवे च, नमो वैश्रवणाय चोपजायत ॥ (वंशब्राह्मण २।२)

अर्थ— ब्रह्माजीको, ब्राह्मणसमूहको, वेदके अध्यापकोंको, ऋषिओंको, देवसमुदयको, वेदचतुष्टयको, वायुको, मृत्युको, श्री विष्णुजी को और वैश्रवण-नामक देवको मैं प्रणाम करता हूं। वंशब्राह्मणके प्रवक्ता ऋषिने गर्गगोत्रके ऋषि शर्वदत्तसे सामवेद का अध्ययन किया था।

['उपजायत'; उपसर्गबलात् अर्थान्तरं—साङ्गं सामवेदम् अध्यैष्ट (वंशब्राह्मणप्रवक्ता ऋषिरिति शेषः)। उपजायत इति वाहुलकात् अड़ाभावः।]

[प्रत्येक वेदकी आचार्यपरम्पराको 'वंश' कहते हैं। उस वंश का वर्णन जिस ग्रन्थमें रहता है, उसका नाम है 'वंशब्राह्मण'। सम्पूर्ण वंशब्राह्मणका नित्य पाठ सम्भव न होनेके कारण गोभिल ने सामवेदियोंके लिये उसका पहला अंश पढ़नेको कहा। उस प्रथम अंशका पाठ करनेपर ही, उसके अन्तके 'उपजायत' (अध्ययन किया था) इस पदसे सम्पूर्ण आचार्योंका स्मरण हो जाता है। 'उप' पूर्व 'जन' धातुके उत्तर 'लङ् त' योगसे 'उपजायत' पद सिद्ध हुआ है, 'अड़ागमाभावश्छान्दसः'।—सायणाचार्यने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।

सामवेदियोंके लिये वंशोपस्थान सूर्योपस्थानके अङ्ग हैं।

'आह्निकतत्त्व-सन्ध्याप्रकरण' में कहा गया—"नमो ब्रह्मण इत्याद्युपजायतेत्येवमन्तेनोपस्थान-मुक्त्वा गोभिलेन अग्निस्तृप्यत्वित्यादिना तर्पणमभिधाय, ततः प्रत्युपस्थानं गायत्र्यष्टशतादीनि जप्त्वेति सूत्रान्तरेण गायत्रीजपरूपोपस्थानमुक्तम्। ततश्च छन्दोगानामुपजायतेत्यन्तमुपस्थानं, ततश्च तर्पणाधिकारे तर्पणं विधाय गायत्रीजपं कुर्यात्।" 'आह्निकतत्त्व-तर्पणप्रकरण' में भी लिखा गया है—"एतच्च तर्पणं ब्रह्मयज्ञानन्तरं छन्दोगेतरपरं, तेषान्तु वैश्रवणायचोपजायतेत्यन्तसूर्योपस्थानानन्तरं गोभिलेन तर्पणाभिधानात्।"]

[अङ्गन्यास]

तत्त्वमुद्रा (दाहिने हाथके अंगुष्ठाग्रमें अनामिकाग्रका संयोग) के द्वारा यह न्यास करे। "यतिस्तु पंचमुद्राभिर्न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः। गृही च यत्नतः कुर्यात् त्रिसन्ध्यं तत्त्वमुद्रया॥" (गायत्रीतन्त्रे)

ॐ हृदयाय नमः (हृदय-स्पर्श)। भू शिरसे स्वाहा (शिरः-स्पर्श)। र्भु शिखायै वषट् (शिखा-स्पर्श)। वः कवचाय हुम् (पहले बायें हाथको दाहिने कंधेके ऊपर और फिर दाहिने हाथ को बायें कंधेके ऊपर रखकर बायें हाथकी तत्त्वमुद्रासे दाहिने कंधेका स्पर्श, और दाहिने हाथकी तत्त्वमुद्रासे बायें कंधेका स्पर्श)। स्वः अस्त्राय फट् (दाहिना हाथ सिरके चारों ओर घुमाकर दाहिने हाथकी तत्त्वमुद्रासे बायें हाथपर आघात)।

इसी प्रकार और भी दो आवृत्ति अङ्गन्यासकी करे।

[अङ्गन्यासके बाद 'गायत्री-शापविमोचन' और 'गायत्री-हृदय' का पाठ करना उत्तम है। 'परिशिष्ट' द्रष्टव्य।]

[गायत्रीके ऋषि, छन्द आदिका स्मरण]

ॐ कारस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री च्छन्दोऽग्निर्देवता, गायत्रीजपे विनियोगः ॥ महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषि-र्गायत्र्युष्णि-गनुष्टुभश्छन्दांसि, अग्नि-वायु-सूर्य्या देवता, गायत्रीजपे विनियोगः ॥ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषि र्गायत्री च्छन्दः, सविता देवता, गायत्रीजपे विनियोगः ॥

[गायत्रीका आवाहन]

कृतांजलि होकर कहे—

ॐ आयाहि वरदे देवि, त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रि च्छन्दसां मात,-र्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ॥
(नारदपुराण पूर्व २७।४३) (पितृदयिता)

अर्थ—हे वरदात्रि, हे देवि, हे (प्रणवस्था) अक्षरत्रयमयि, हे वेदप्रकाशिनि, हे वेदमातः (वेदप्रसविनि), हे परब्रह्मोद्भवे गायत्रि ! आप आइये, आपको मेरा प्रणाम है ॥

[गायत्रीका ध्यान]

["गायत्री ब्रह्मरूपा तु सावित्री विष्णुरूपिणी। सरस्वती रुद्र-रूपा उपास्या रूपभेदतः ॥" (कात्यायनः)]

(प्रातःसंध्यामें)

ॐ कुमारी-मृग्वेदयुतां ब्रह्मरूपां विचिन्तयेत्।
हंसस्थितां कुशहस्तां सूर्य्यमण्डलसंस्थिताम् ॥
(पितृदयिता)

अर्थ—प्रातःकालमें सूर्यमण्डलमें रहनेवाली, कन्यारूपा, ऋग्वेद लिये, ब्रह्मरूपा, हंसपर बैठी हुई और हाथमें कुश ली हुई गायत्रीका ध्यान करे।

(मध्याह्नसन्ध्यामें)

ॐ मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च तार्क्ष्यस्थां पीतवाससाम्।
युवतीञ्च यजुर्वेदां सूर्य्यमण्डलसंस्थिताम्॥
(पितृदयिता)

अर्थ—सूर्यमण्डलमें रहनेवाली, युवावस्थावाली, पीले वस्त्र पहनी हुई, विष्णुरूपा (अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये), गरुड़पर बैठी हुई, यजुर्वेदसे युक्त गायत्रीका मध्याह्नकालमें ध्यान करे।

(सायंसन्ध्यामें)

ॐ सायाह्ने शिवरूपाञ्च वृद्धां वृषभवाहिनीम्।
सूर्य्यमण्डल-मध्यस्थां सामवेद-समायुताम्॥
(पितृदयिता)

अर्थ—सूर्यमण्डलमें रहनेवाली, वृद्धरूपा, रुद्ररूपधारिणी (अर्थात् त्रिशूल, डमरू, पाश तथा पात्र लिये), बैलपर बैठी हुई, सामवेदसे युक्त गायत्रीका सायंकालमें ध्यान करे।

[गायत्री-जपके पूर्वकी चौबीस (२४) मुद्रायें]

गायत्री-ध्यानके बाद करना चाहिये। 'परिशिष्ट' द्रष्टव्य।

[गायत्री-जप]

[जपनेमें गायत्री-मंत्रका स्वरूप]

ॐ भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं ❀। भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥ (महर्षि पराशरः, योगियाज्ञवल्क्यः, भगवान् श्रीशङ्कराचार्य्यः)। [* वरेणियम् कहे ।]

इस गायत्री महामंत्रका अर्थ चिन्तन करता हुआ कम-से-कम दश बार जप करे, क्योंकि दशवार जपनेको अवर—अधम—निकृष्ट कहा गया है, इसलिये इससे कम जपनेसे कुछ भी पारलौकिक फलकी प्राप्ति नहीं होती। गायत्रीका हजार जप उत्तम है, सौ बार जप मध्यम है और दश बार जप अधम है। नियमितरूपसे प्रतिदिन गायत्री जपनेसे विप्र पापोंसे लिपायमान नहीं होता—"सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं तु जपन् विप्रो न पापै र्विप्रलिप्यते ॥" (अत्रिः) "सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । सहस्रनेत्रां गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ॥" (गायत्री-हृदये) यहां 'सहस्र' शब्दसे एक हजार आठ और 'शत' शब्दसे एक सौ आठ जाने। 'गायत्रीकल्प' में कहा गया है—"अष्टोत्तरसहस्रां वा अष्टोत्तरशतं तु वा। अष्टाविंशतिमेवाथ गायत्री-दशकं जपेत् ॥" 'वरेण्यं' को 'वरेणियम्' पढ़नेके लिये भी कहा गया है—"वरेण्यं विरलं चोक्त्वा जपकाले विशेषतः ॥" (गायत्री-कल्पे)।

शास्त्रोंमें गायत्री-मन्त्रके जपका बहुत बड़ा माहात्म्य बताया गया है। योगी याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—'प्रतिदिन सात बार जप करनेसे गायत्री देवी शरीरको पवित्र करती हैं, दस बारके जपसे स्वर्गलोककी प्राप्ति कराती हैं, बीस बार जप करनेसे शिवलोकमें पहुंचाती है और एक सौ आठ बारके जपसे जन्म-समुद्रसे पार कर देती है। जो इससे पार हो जाता है वह पुनः इस जन्म-मृत्युके दुःख को नहीं देखता'—"सप्तभिः पावयेद् देहं दशभिः

आपयेद् दिवम्। विंशत्यावर्त्तिता देवी नयते चेश्वरालयम् ॥ अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा तारयेज्जन्मसागरात्। तीर्णो न पश्यति प्रायो जन्म मृत्युं हि दारुणम् ॥" (योगियाज्ञवल्क्य) 'बृहद्यमस्मृति' का वचन है कि—'द्विज केवल वेदके स्वाध्यायसे उस प्रकार अपने पापों को नहीं दग्ध कर सकता, जिस प्रकार कि गायत्री जप करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है—"न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः। यथा सावित्री-जपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" (बृहद्-यम-स्मृतिः)।

गायत्री वेदमूल है और वेदगान पर्वोपर होता है। इस कारण गायत्रीका जप पर्वोपर करना प्रशस्त है—"पर्वभिस्तु जपेद् देवीं, माला काम्यजपे स्मृता। गायत्री वेदमूलत्वाद् वेदः पर्वसु गीयते ॥" (गायत्री-कल्पे) 'शैवागम' में कहा गया है—नित्यं जपं करे कुर्यान् न तु काम्यं कदाचन। काम्यमपि करे कुर्यात् माला-भावे च सुन्दरि ॥" अर्थात् प्रतिदिनका नित्यजप पर्वोपर करना चाहिये, काम्य जप कदापि पर्वोपर न करे। परन्तु मालाके अभावसे काम्य जप पर्वोपर भी किया जा सकता है।

मालासे जपनेवालेको भी कम-से-कम दस बार गायत्री-मंत्र का करमालापर भी जप करना आवश्यक है।

अंगुलीके अग्रभाग (नखके पास) तथा पर्वकी लकीरपर और सुमेरूका उल्लङ्घन कर किया हुआ जप निष्फल होता है। -

"अंगुल्यग्रे च यज्जप्तं, यज्जप्तं मेरूलंघनात्।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥

(मदनपारिजाते)

करमालासे जपनेके समय जपकी संख्या रखनेका नियम इस प्रकार है—दाहिने हाथकी अंगुलियोंपर दस मंत्र जपकर वायें हाथकी अनामिका अंगुलीके मध्यपर्वपर वह एक दहाईकी संख्या गिने। इसी प्रकार बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलीके मध्यपर्वसे लेकर कनिष्ठाके पोरूओंपर होते हुए तर्जनीके मूलतक दस पोरूओंपर क्रमशः दश बार गिन लेनेसे १०० संख्या हो जाती है। फिर आठ मंत्र दाहिने हाथपर पूर्वोक्त क्रमसे और जप कर ले।

[गायत्री जपके बाद "सुरभिः" आदि आठ 'मुद्रा' का प्रदर्शन और 'गायत्री-कवच' का पाठ करे।]

[गायत्री-विसर्जन]

हाथमें जल लेकर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर जल छोड़े।—

ॐ महेश-वदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदयसम्भवा।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया॥

(गायत्रीतन्त्र)

अर्थ—हे देवि गायत्रि! आप श्रीमहेश्वरके श्रीमुखसे उत्पन्न हुई हैं, आप श्रीविष्णुजीके हृदयमें निवास करती हैं, और ब्रह्माजी आपको सम्यक्रूपसे जानते हैं; अब आप स्वेच्छापूर्वक जाइये।

इसके बाद फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर जल छोड़े।—

ॐ अनेन जपेन भगवन्ता-वादित्यशुक्रौ प्रीयेताम। ॐ आदित्य-शुक्राभ्यां नमः॥

अर्थ—इसी जपके द्वारा भगवान् आदित्य और शुक्र प्रीत हो जायँ। भगवान् आदित्य और शुक्रको जलदानसे तृप्त करता हूं॥

[आत्मरक्षा]

अपनी रक्षाके लिये अपने चारों ओर अग्नि-प्राचीरकी भावना करके, दाहिने हाथमें जल लेकर, इस मंत्रको पढ़कर, उस जलको दाहिनी तरफसे अपने चारों ओर छिड़कें।

जातवेदस इत्यस्य कश्यप ऋषि-स्त्रिष्टुपछन्दोऽग्निर्देवतात्मरक्षायां जपे विनियोगः॥

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोम,-मरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा, नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ (ऋग्वेद, १। ७।७)।

अर्थ—जातवेदसे इत्यादि मंत्रका कश्यप ऋषि, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्नि देवता, और आत्मरक्षाके लिये जपमें इस मंत्रका प्रयोग होता है।

हम अग्निकी (तद्देवताकी) प्रीतिके लिये सोमयज्ञका अनुष्ठान करते हैं। वह अग्नि हमारे शत्रुका धन भस्म कर डालें, और जैसे मलाह नौकासे सवारियोंको नदीके पार पहुँचा देता है, उसी प्रकार अग्नि हमें समस्त दुःखोंसे तथा दुःखोंके हेतु-भूत पापसे पार करें॥

[रुद्रोपस्थान]

कृतांजलि होकर कहे—

ऋतमित्यस्य कालाग्निरुद्र ऋषि-रनुष्टुप् छन्दो, रुद्रो देवता, रुद्रोपस्थाने विनियोगः॥

ॐ ऋत छं सत्यं परं ब्रह्म, पुरुषं कृष्ण-पिङ्गलम् । ऊर्ध्व रेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः ॥ (तैत्तिरीय आरण्यक, १० । १२) ।

अर्थ—ऋतमित्यादि मंत्रका कालाग्निरुद्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्दः, रुद्र देवता और रुद्रोपासनामें इसका प्रयोग होता है । जो (व्यवहारतः सत्य न होकर भी) वस्तुतः सत्य हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त उमा-महेश्वरात्मक पुरुषरूप धारण करते हैं, [अतः] जो [दायें तरफ महेश्वर-भागमें] कृष्णवर्ण हैं, और [बायें तरफ उमा-भागमें] पिङ्गलवर्ण हैं, जो योगबलसे ऊर्ध्वरेता हैं, और जो [तीन नेत्रोंवाले होनेसे] विरूपाक्ष हैं, उसी विश्वरूप पुरुषको मैं बार-बार प्रणाम करता हूं । [तमोमय संहारमूर्त्तिधारी होकर महादेव कृष्णमूर्त्तिसे प्रकट होते हैं] ।

निम्नलिखित एक-एक मंत्र पढ़कर एक-एक अंजली जल छोड़े ।—

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ रुद्राय नमः । ॐ वरुणाय नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और वरुणजीको मैं जलसे तृप्त करता हूं ॥

[गायत्री-तर्पणम्]

सन्ध्याविसर्जनके बाद सूर्य्यार्घ्य देनेसे पहले केवल प्रातः सन्ध्यामें यह तर्पण करे । ['परिशिष्ट' द्रष्टव्य] ।

[सूर्य्यार्घ्य-दान]

नीचे लिखा मंत्र पढ़कर सूर्य्यनारायणको अर्घ्य दे या अर्घ्य के अभावसे जल दे ।—

इदमर्घ्य—ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन्, भास्वते विष्णुतेजसे ।

जगत्सवित्रे शुचये, सवित्रे कर्मदायिने ॥ ॐ श्रीसूर्य्यभट्टारकाय नमः ॥ (कालिकापुराणे, ५७।१७९ तथा विष्णुपुराणे)

अर्थ—हे परब्रह्मस्वरूप सवितृदेव, आप तेजस्वी, दीप्तिमान्, विश्वव्यापि तेजके आधार, संसारके रचनेवाले, पवित्र, और प्राणियोंको कर्मोंमें लगानेवाले हैं, आपको मेरा प्रणाम है। यह अर्घ्य मैंने पूजनीय सूर्यनारायणको अर्पण किया ॥

[सूर्य्य-प्रणाम]

नीचे लिखे मंत्रसे हाथ जोड़कर श्रीसूर्य्यनारायणको प्रणाम करे।—

ॐ जवाकुसुम-सङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥
(नवग्रहस्तोत्रे)

अर्थ—जवा फूलके समान लाल, महर्षि कश्यपजीके पुत्र, अत्यन्त दीप्तिमान्, अन्धकारका नाश करनेवाले, सम्पूर्ण पापोंके नाशक, दिवाकर, सूर्यनारायणको मैं प्रणाम कर रहा हूं ॥

[आचमन]

एक बार आचमन करके फिर विष्णुस्मरण करे। कहा गया है—"सन्ध्यातो विरमेद् विद्वान् प्रसन्नवदनाम्बुजः। ध्यायन् कृतार्थ-मात्मान-माचम्य मौन-मुत्सृजेत् ॥"—"कर्मणोऽन्ते आचमन-ञ्चेति सामान्यम्।" (गृह्यपरिशिष्टः)

[संध्याङ्ग भूमृत्तिका-धारण]

"ॐ भू र्भुवः स्वः ॥ स्वः। भुवः। भूः। ॐ ॥ ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः ॥" कहकर प्रणाम करके,

आसनके नीचे जल छोड़कर, उस जलको, आसनके नीचेकी मृत्तिकाके साथ ललाटमें लगावे। क्योंकि कहा गया है—"अप्रोक्षित-जपस्थानात् शक्रो हरति तज्जपम्। तन्मृदालब्य कुर्वीत ललाटे तिलकाकृति॥" (गायत्रीपटल)॥ अर्थात् जिस स्थानपर बैठकर जप किया गया है, उसके नीचेकी मृत्तिका मस्तकमें लगावे। ऐसा न करनेसे जपके फलको इन्द्र ले लेता है।

(भगवान्से प्रार्थना)

तत्पश्चात् कर्ममें न्यूनताकी पूर्त्तिके लिये निम्नोक्त श्लोकोंको पढ़ते हुये भगवान्से प्रार्थना करे।—

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

अर्थ—यज्ञमें कर्म करनेवालोंका जो कर्म प्रमादवश विधिसे च्युत हो जाय, वह भगवान् विष्णुके स्मरणमात्रसे ही पूर्ण हो सकता है—ऐसा श्रुतिका वचन है।

जिनके स्मरण और नामोच्चारणसे तप, यज्ञ आदि क्रियाओंमें न्यूनताकी तत्काल पूर्त्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं प्रणाम करता हूं॥

फिर निम्नोक्त वाक्य पढ़कर यह सन्ध्योपासन-कर्म परमेश्वरको समर्पित करे।—

अनेन सन्ध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां, न मम। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु॥

सन्ध्याके पश्चात्, बचे हुये जलको फेंक देवे क्योंकि कहा गया है—"पादशेषं, पीतशेषं, सन्ध्याशेषं तथैव च। शुनो-मूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" अर्थात् पैर धोनेसे, पीनेसे, और सन्ध्या करनेसे बचा हुआ जल कुत्तेके मूत्रके समान [अपवित्र] हो जाता है, उसके पी लेनेसे चान्द्रायण-व्रत करनेपर पवित्र होता है।

[प्रातःसन्ध्याके पश्चात् शिवपूजादि करके इसी रीतिसे ही "शन्न आपो धन्वन्याः" से आरम्भ करके 'भगवान्‌से प्रार्थना' पर्यन्त मध्याह्नसन्ध्या करे, और सायंकालमें उक्त रीतिसे ही सायंसन्ध्या करे।] ॥

॥ समाप्तोऽयं सामवेदीय-सन्ध्याप्रयोगः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

—o—

गायत्रीजपफलम्

अग्निपुराण एव गायत्रीं प्रति ब्रह्मवाक्यम्,—

कुर्वन्तोऽपीह पापानि ये त्वां ध्यायन्ति पावनि ।
उभे सन्ध्ये न तेषां हि विद्यते देवि पातकम् ॥
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥

वृहद्यमः,—

न तथा वेदजप्येन पापं निर्दहति द्विजः ।
यथा सावित्रीजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
गायत्रीजपनिरता गच्छन्त्यमृततां द्विजाः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे,—

गायत्रीं जपते यस्तु द्वौ कालौ ब्राह्मणः सदा ।
तया राजन् स विज्ञेयः पंक्तिपावनपावनः ॥
कामकामो लभेत्कामं गतिकामस्तु सद्गतिम् ।
अकामस्तदवाप्नोति यद्विष्णोः परमं पदम् ॥

परमाराध्य अनिकेतनवासी श्री १००८ शंकर-स्वामीजी
श्रीश्रीशङ्करतीर्थजी महाराज-लिखित व लिखीयमान

ग्रन्थावली—

(क) बङ्गला

१। साधन-सहाय ३)
२। साधन-सहाय परिशिष्ट १)
३। "चंडालोऽपि द्विज-श्रेष्ठो हरिभक्ति-परायणः" ।।)
४। समन्वय ।।)
५। भक्ति और ज्ञान ।।)
६। दीक्षातत्त्व-विचार १)
७। तत्त्व-निरूपण १)
८। जगतका मूलकारण ३)
९। मृत्युके बादकी अवस्था २)
१०। वर्णाश्रम-प्रसङ्ग २)
११। प्रबन्ध-रत्नावली २)
१२। विचार-धारा २)
१३। भगवान् श्रीकृष्ण व उनके उपदेशामृत १)
१४। कलियुगमें पशुबलि निषिद्ध है =)
१५। शैवदर्शन =)

(ख) हिन्दी

१६। आत्मप्रसङ्ग २)
१७। धर्मप्रसङ्ग २)
१८। यजुर्वेदि-संध्याविधिः ।।)
१९। बलिवैश्वदेव ।)
२०। श्रीमद्भगवद्गीता 'मुमुक्षुबोधिका'-व्याख्यासमेता (संस्कृतभाषामें) ४)

प्राप्ति स्थान—

श्रीअनादिशरण मजुमदार
ए० पी० दत्त एण्ड कोम्पानी,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

श्रीशिवराम मिश्र पण्डा
C/o मायाराम मिश्र पण्डा,
वैद्यनाथधाम (एस०पी०)